समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार का मासिक

उत्तर प्रदेश

अक्टूबर–नवम्बर–दिसम्बर, 2023, वर्ष 48

₹ 15/-

राम पदारथ त्रिपाठी 'मधुकर' की एक कविता

किसी को पता हो तो

कहाँ है मेरा घर कहाँ है ठिकाना,
किसी को पता हो तो मुझको बताना,
हर उम्र में ढूंढ़ता ही रहा मैं
कहाँ से मैं आया कहाँ मुझको जाना,
अजब आदमी है गज़ब ढ़ाल का
कई रूप का है कई खाल का
जुगत जो करे रात–दिन माल का,
पता न चले जिसके किसी चाल का
मानव को माधव बनाये जो कोई
ऐसा मिले तो मुझे भी बताना,
कहाँ है मेरा घर कहाँ है ठिकाना
हर सांस में जिसके फितरत न हो
किसी दृष्टि से जिसमें नफरत न हो,
बिना दाम के काम में काम दें,
किसी के कहे का न संज्ञान ले,
कदम से कदम जो मिलाता चले,
आनन्द के गीत गाता चले
किसी उम्र में कोई ऐसा मिले तो
उसको हमारा पता भी बताना,
कहाँ है मेरा घर कहाँ है ठिकाना
दया दान के अर्थ बदले हुए हैं,
मानव मानवता पर हमले हुए हैं,
झुलसी पड़ी भावना इस तरह
आँखों में भी उसके छाले पड़े हैं,
तन पर वतन पर दिए ज़ख़्म हैं
जरा सोच तो कितने कम्बख़्त हैं
अंधों और बहरों की इस भीड़ में,
क्या देखना और क्या कुछ सुनना।

◆

पता : सी.एच.178, पल्लव पुरम,
फेज–I, मेरठ–250110
मो. : 9457818787

अनुक्रम

कहानी

- मौत का तार ❑ संध्या रियाज / 3
- भूली बिसरी यादें ❑ डॉ. अर्चना प्रकाश / 6
- अधिकार ❑ प्रवीण कुमार सहगल / 7
- किरायेदार माँ–बाप ❑ प्रियंका पाठक / 11
- अंतिम यात्रा ❑ रेनू सैनी / 15
- हरी साड़ी ❑ राजेन्द्र राजन / 18
- एक प्रेमकथा ❑ डा. प्रीति कबीर / 24

पुस्तक समीक्षा

- काल के कपाल पर हस्ताक्षर ❑ राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय / 30

कविताएं

राम पदारथ त्रिपाठी 'मधुकर' की एक कविता / आवरण–2

सैय्यद नाज़िश अहमद उफ़क़ आज़मी की कविता / आवरण–3

उत्तर प्रदेश

❑ वर्ष 48 ❑ अंक 56, 57, 58

❑ अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर–2023

संरक्षक एवं मार्गदर्शक : ❑ **संजय प्रसाद**
प्रमुख सचिव, सूचना

प्रकाशक एवं स्वत्वाधिकारी : ❑ **शिशिर**
सूचना निदेशक, उत्तर प्रदेश

सम्पादकीय परामर्श : ❑ **अंशुमान राम त्रिपाठी**
अपर निदेशक, सूचना

❑ **डॉ. मधु ताम्बे**
उपनिदेशक, सूचना

❑ **डॉ. जितेन्द्र प्रताप सिंह**
सहा. निदेशक, सूचना

अतिथि सम्पादक : ❑ **कुमकुम शर्मा**

उपसम्पादक, सूचना : ❑ **दिनेश कुमार गुप्ता**

आवरण : **अन्तरिक्ष**

भीतरी रेखांकन : **रीतिका**

सम्पादकीय संपर्क : सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, पं. दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ

मो. : 9565449505, 8960000962

ईमेल : upmasik@gmail.com

दूरभाष : कार्यालय : ई.पी.ए.बी.एक्स 0522–2239132–33, 2236198, 2239011

पत्रिका information.up.nic.in वेबसाइट पर उपलब्ध है।

❑ **एक प्रति का मूल्य** : पंद्रह रुपये

❑ **वार्षिक सदस्यता** : एक सौ अस्सी रुपये

❑ **द्विवार्षिक सदस्यता** : तीन सौ साठ रुपये

❑ **त्रैवार्षिक सदस्यता** : पांच सौ चालीस रुपये

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे मासिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' और सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

–सम्पादक

आवर्तन

पता नहीं क्यों कैलाश वाजपेयी जी की एक कविता आजकल बहुत याद आ रही है। बात उनकी इस अमर कविता से ही शुरू करते हैं।

जग सुने न इतना धीरे गा
चुपचाप सुलग, बाहर मत आ
कब किसका दर्द बंटाया है, कोलाहल ने
ये कहा पपीहे से संन्यासी बादल ने
यों नया–नया कांटा भी कोमल होता है
पर विगत चुभन की सुधि से ही जग रोता है
जब भला बुरा सब आंका जाता है इति से
तू ही फिर क्यों अनभीगे स्वप्न संजोता है,
आँधी आती है आने दे
मन बुझता है बुझ जाने दे
कब ढला सूर्य लौटाया है अस्ताचल ने
ये कहा किसी मरणोन्मुख से गंगाजल ने।

–कैलाश वाजपेयी

आज के इस कठिन दौर में जब पूरी दुनिया विकास के चरम पर है अपसंस्कृति और उपभोक्तावाद हमारी नई पीढ़ी को लगातार भ्रमित कर रहे हैं। ऐसे में अपने अस्तित्व को बचाए रखना मुश्किल हो गया है, फिर भी हमें आशान्वित रहते हुए अपने अस्तित्व की लड़ाई को निरन्तर बनाए रखना हैं ताकि हम अपने सांस्कृतिक मूल्यों और सभ्यता को सुरक्षित कर सकें। एक चर्चा आजकल प्रमुख है, कि लोगों में पढ़ने की प्रकृति कम हुई है, ऐसा प्रथम दृष्टया दिखाई भी देता है। बाज़ारवाद के चलते आज अच्छे साहित्य की जगह 'बेस्ट सेलर' किताबों ने ले ली है। बाजार की अवधारणा को अमली जामा पहनाते हुए अधिकाधिक धनोपार्जन की लिप्सा ने आज साहित्य को भी एक उत्पाद की संज्ञा दे दी है। उत्कृष्ट कलाकृतियाँ उत्पाद हो सकती हैं बेची जा सकती हैं पर यही उनका मंतव्य नहीं है, लेकिन बाज़ार तो हर चीज को एक उत्पाद की तरह ही देखता है। इस घोर अर्थवाद के चलते पुस्तकें पढ़ने वालों की कमी तो हुई है, लेकिन सभ्य आचरण और व्यवहार की पवित्रता खतरे में दिखाई देती है, फिर भी इस तमाम सामाजिक बदलावों के बावजूद हमारे रचनाकार अपने दायित्वों का निर्वाह बखूबी कर रहे हैं। जिसकी आहट हमें उनके लेखन में सृजन में सुनाई देती रहती है। आज भी ऐसे अनेक रचनाकार हैं जो निरन्तर जीवन और समाज की गहराइयों में झांकते हुए प्राकृतिक सुन्दरता और रिश्तों की पवित्रता वाजपेयी की कविता याद आ रही है–

शब्द बार–बार हमें
बासी पड़े अर्थ की
कुब्जा सतह तक ले जाते हैं,
विचार–घास ढँका दलदल
विचार हमें तर्क की पेंचदार
खाई में
धक्का दे आते हैं
जबकि सद्भाव,
खुला आसमान है
जो आदमी अपने भाई पड़ोसी या दोस्त
या किसी की भी
जलती चिता पर खिचड़ी पकाए
उस आदमी को आदमी क्यों
कहा जाय।

–कैलाश वाजपेयी

इस अंक में हमने संध्या रियाज, महावीर अग्रवाल, राम पदारथ त्रिपाठी, प्रीति कबीर, राजेन्द्र राजन, रेनू सैनी यदि की रचनाएं हैं।

उत्कृष्ट साहित्य की समस्त विधाओं को प्रकाशित करना नवोदित रचनाकारों को प्रोत्साहित हमारा प्रथम कर्तव्य है जिसे हम पूरी निष्ठा से करते रहेंगे। उत्तर प्रदेश समकालीन रचनाशीलता को रेखांकित करने के लिए प्रतिबद्ध है।

अंक आपके कैसे लग रहे हैं, अवश्य बताइयेगा। प्रतीक्षा रहेगी।

● कुमकुम शर्मा

मौत का तार

❑ संध्या रियाज़

मा मा की मौत की खबर से घर में मातम छा गया था। हमारी दादी अम्मा जो अपनी बहू यानी कि हमारी अम्मा को हमेशा तिरछी नज़रों से देखती थी, कभी उनका कोई काम उनको फूटी आँख न भाता था, और उसपे अम्मा पे इलजाम था कि उन्होंने पापा को अपने पल्लू से बांध लिया है, वैसे लाल घर का लायक बेटा था—बचपन से पापा को लाड़ से लाल कहते थे, और आज भी कहते हैं लेकिन अब लाल ने नालायक की उपाधि दादी से पाई हुयी थी वो भी सिर्फ और सिर्फ इसी बहू के चलते यानी हमारी अम्मा के चलते ... वैसे "इसी" शब्द को जोर दे दे के हमेशा कहा जाता था। वैसे देखा जाए तो इस घर में बहू और बेटा इकलौते हैं लेकिन दादी हमेशा "इसी" शब्द को दांत से पीस—पीस के कहती थीं। वैसे हमारी अम्मा ! अम्मा सीधी थीं लेकिन इतनी नहीं कि जो आये और उनको हकाल के चला जाए वो दादी से तो कुछ न कहतीं लेकिन पापा से बोलती थीं —तब आप अपनी बोलती बंद करके सुनते रहते हैं ..... कभी तो कुछ कहा करिए.... क्या मैंने आपको अपने पल्लू से बाँध के बिगाड़ा है और पापा कहते तुम शांत रहो... देखो हमारी अम्मा तुमको कितना समझदार कह रही हैं ये सोचो कितनी ताकत है तुम में पल्लू से बाँध लेती हो एक हट्टे कट्टे गबरू जवान को, घर के इकलौते लाड़ले को ... अम्मा को पापा का मज़ाक बिलकुल पसंद नहीं आता था और वो अक्सर गुस्से में बिदक के आँगन में चली जाती थी।

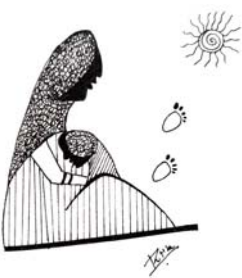

पापा सच में दादी को कुछ न कहते यहाँ तक कि हम बच्चों को उनके सामने न प्यार करते न गोद में लेते .. अदब था ये दादी के लिए वरना ऐसा समझा जाता कि वो बच्चों को गोद में लेके दिखा रहे हैं और शेखी बघार रहे हैं कि देखिये ये बच्चे हमने पैदा किये हैं और आप समझ सकते हैं इसका मतलब क्या है और दादी को ये दिखाना मतलब उनकी बेअदबी करना .... कोई अपनी माँ को कैसे कह सकता या जता सकता है ये, सो दादी के सामने पापा हमारे पापा कम और दादी के बेटे ज्यादा बन जाते, वो इशारों—इशारों में हम सब से बात करते जब कभी हम मचल के उनकी गोद को अपना किला समझ के बिना इजाज़त चढ़ाई कर देते तो वो बेमुरव्वतती से फटकार देते की चलो अन्दर जाओ अपनी माँ के पास .. जैसे उनका हमारा कोई रिश्ता नहीं, ये सब देख के दादी के दिल को सुकून मिलता था आख़िर उनका बेटा कितना फर्मावरदार है और

उनका ऐहतराम करता है अब तक पूरी तरह से नहीं बदला है शुक्र है भगवान् का और फिर वो दिन हम सबका अच्छा गुजरता था।

घर दो खेमे में बंटा था एक हिस्सा दादी का और एक अम्मा का, दोनों अपने अपने इलाके में रहती और एक दूसरे की सरहदों को पार नहीं किया जाता था ये बिना लिखा रूल था जो दोनों नियम से निभाती थी। दादी का बिस्तर ठीक बैठक के सामने था पूरी दालान उनकी कौन आया कौन गया किसने क्या कहा किसको क्या देना है क्या लेना है–और अम्मा की सरहद अन्दर के कमरे से शुरू होक रसोई से पूरा आँगन कवर करती थी।

लेकिन आज सरहदे मिट गयीं थी मामा की मौत की खबर का तार आते है सब कुछ अलग सा था – हमारी अम्मा दादी के बिस्तर के कोने में बैठी रो रही थीं अभी नहा के आई थीं साड़ी ब्लाउज़ गीला, गीले बालों में पापा की टॉवल लिपटी थी दादी पहचान रहीं थी लेकिन आज कोई और बात थी उन्होंने अम्मा पे टोपें नहीं दागी थीं बल्कि आज वो रोती हुयी अम्मा को चुप करा रहीं थीं.. उनको गले से भी लगा रहीं थी। हम बच्चे अक्सर बिना वजह जाने माँ के रोने पे साथ–साथ रोने लगते थे सो आज भी अम्मा के साथ हम भी रो रहे थे। दादी ने पापा से कहा अरे उठा बच्ची को गोद में ले ... चुप कराओ उसको ...पापा सकपकाए और हुक्म मानते हुए हमें गोद में ले लिए। दादी भी रो रही थीं ... भगवन की मर्ज़ी है बहू... इत्ता ही जीना होगा तुम्हारे भाई को .. छोटा था। तुमसे लेकिन बड़े का हक निभाता था ... उसको हमेशा याद रहता था कि बहन के ससुराल कैसे जाते हैं बड़ा एहतराम करता था ...ईश्वर उसकी रूह को सुकून दे। दादी पढ़ी लिखी थीं उर्दू बहुत अच्छी आती थी तब उर्दू एक ज़बान होती थी मज़हब नहीं तो हर जाति धर्म के लोग पढ़ते और बोलते थे कोई गुरेज़ न था सो हमारी दादी भी ठेट हिंदी के सख़्त शब्दों का इस्तेमाल न करके हिन्दुस्तानी बोलती थीं जिसमें हिंदी और उर्दू दोनों जबाने बहनों की तरह साथ रहती थीं। दादी ने पापा से कहा की अब वक्त क्यूँ गवा रहे हो जाओ बस के टिकट कटाओ बहु को ले जाओ मायेके ... बेचारी ने अपना जवान भाई खोया हैं।

पापा सच में दादी को कुछ न कहते यहाँ तक कि हम बच्चों को उनके सामने न प्यार करते न गोद में लेते .. अदब था ये दादी के लिए वरना ऐसा समझा जाता कि वो बच्चों को गोद में लेके दिखा रहे हैं और शेखी बघार रहें हैं की देखिये ये बच्चे हमने पैदा किये हैं और आप समझ सकते हैं इसका मतलब क्या है और दादी को ये दिखाना मतलब उनकी बेअदबी करना .... कोई अपनी माँ को कैसे कह सकता या जता सकता है ये, सो दादी के सामने पापा हमारे पापा कम और दादी के बेटे ज्यादा बन जाते, वो इशारों–इशारों में हम सब से बात करते जब कभी हम मचल के उनकी गोद को अपना किला समझ के बिना इजाज़त चढ़ाई कर देते तो वो बेमुरव्वती से फटकार देते कि चलो अन्दर जाओ अपनी माँ के पास .. जैसे उनका हमारा कोई रिश्ता नहीं, ये सब देख के दादी के दिल को सुकून मिलता था आखिर उनका बेटा कितना फर्मावरदार है और उनका ऐहतराम करता है अब तक पूरी तरह से नहीं बदला है शुक्र है भगवान् का और फिर वो दिन हम सबका अच्छा गुजरता था।

असल में सुबह डाकिये ने पोस्ट कार्ड दिया था जिसमें मामा की मौत की खबर थी और इस खबर के साथ ही सुबह से घर में मातम मन रहा था। हमने भी जिद की कि हम भी मामा के घर के जायेंगे दादी ने कहा नहीं ... बिलकुल नहीं तुम यहीं हमारे साथ रहना वहां तुम्हारी अम्मा सबको देखेंगी की तुम्हारी तीमारदारी करेंगी... नहीं जाना है ... हम भी एक नंबर के गधे हमने अम्मा से कहा तो हमें एक रूपया दे के जाना हम शाम को चिरोंजी की पट्टी लेंगे काका से। दादी चिढ़ गयीं आय हाय !! कैसी मरदूद लड़की है खाने की पड़ी हैं बेवकूफ पता भी नहीं कितने दुःख की घड़ी है। पापा मुझे गोद में लिए खड़े थे वो भी दादी के सामने जिन्होंने एक दिन गलती से दादी के सामने हमें उठा लिया था और सामने दादी पे नज़र पड़ते ही उतारने की जगह छोड़ दिया था ये तो कहो अपने अमरुद के पेड़ पे चढ़ने और फिसल के उतरने का हमें अच्छा ख़ासा तजुर्बा था सो हमने अपने आप को संभाल लिया था, ये तो छोड़िये एक दिन तो पापा सिगरेट पी रहे थे दालान में उनको क्या पता दादी का मुआयना यानी तहकीकात का समय चल रहा है वो वैसे भी दबे पाँव चलती थीं और हम सबको भी धम धम पाओं रखके चलने को मना करती थीं सो पापा को पता नहीं चला कि वो ठीक पापा के पीछे खड़ीं थीं उनके लाल ! बोलते ही पापा ने आव देखा न ताव सीधी जलती सिगरेट जेब में डाल ली थी दादी तो चली गयी कुछ कह के लेकिन बाद में पापा ने खूब सुनी मम्मी से वो मम्मी की पसंद की शर्ट थी और पापा का जेब जलके गायब हो गया था साथ ही अन्दर का कपड़ा भी जल गया था।

खैर आज सब कुछ अलग लग रहा था । दादी और

अम्मा का एक साथ पलंग पे बैठना, दादी का उनको प्यार से गले लगाना उनको चुप करना और पापा का उनके सामने हमें गोद में लेना लगता है दुःख कभी–कभी बहुत सारे घाव भर देता है और दीवारें भी पाट देता हैं। हर वक्त चिल्लाने और डांटने वाली दादी सहज सरल सी प्यार की मूर्ति लग रही थी। कोमल हृदय ने कहा अच्छा हुआ डाकिये चाचा ने बुरी खबर सुनाई लेकिन मम्मी को रोता देखके तुरंत माफी मांगी की हे भगवान जी मेरी प्रार्थना न सुनना घर में कुछ भी बुरा हो अम्मा का रोना सबसे पहले शुरू होता है। वैसे देखो तो हंसी की बात है लेकिन माँ अपने आपको घर के हर रिश्तों से तो जोड़ती ही है यहाँ तक कि घर की दीवार भी गिर जाए तो रो देती थीं।

खैर आज सब कुछ अलग लग रहा था। दादी और अम्मा का एक साथ पलंग पे बैठना, दादी का उनको प्यार से गले लगाना उनको चुप करना और पापा का उनके सामने हमें गोद में लेना लगता है दुःख कभी–कभी बहुत सारे घाव भर देता है और दीवारें भी पाट देता है। हर वक्त चिल्लाने और डांटने वाली दादी सहज सरल सी प्यार की मूर्ति लग रही थी। कोमल हृदय ने कहा अच्छा हुआ डाकिये चाचा ने बुरी खबर सुनाई लेकिन मम्मी को रोता देखके तुरंत माफी मांगी की हे भगवान जी मेरी प्रार्थना न सुनना घर में कुछ भी बुरा हो अम्मा का रोना सबसे पहले शुरू होता है। वैसे देखो तो हंसी की बात है लेकिन माँ अपने आपको घर के हर रिश्तों से तो जोड़ती ही है यहाँ तक कि घर की दीवार भी गिर जाए तो रो देती थीं।

खैर पापा हमें एक रुपया दे के बस का टिकट कटाने जा चुके थे। मम्मी ने अपना बक्सा तैयार कर लिया था रोते रोते भी वो रसोई का सामान और खाने का सब कुछ मौसी यानि काम वाली को बता रही थीं दादी ने अपनी गद्दी यानि पलंग पे बैठे बैठे चिल्लाया– अरे जा बहू अपनी तैयारी कर मैं हूँ यहाँ चिंता न कर, देख लूंगी। मम्मी बक्से के साथ तैयार हर रही थीं दादी उनको गले से लगाती हैं ... अपने बटुए से कुछ रुपये निकाल के मम्मी को देती हैं कि रख कुछ काम आ जायेंगे। मम्मी दादी के गले लग के एक बार वापिस जोर–जोर से रो देती हैं इस बार दादी भी रोने लगती हैं। पापा आ गए टिकट लेके। तांगा बुलाने हम सब बाहर दौड़े। दादी और अम्मा साथ–साथ बाहर आ रहीं थी तभी डाकिया चाचा वापिस आये इस बार पोस्ट कार्ड की जगह तार आया था। अम्मा ने पापा से कहा देखो किसका पत्र आया है। पापा ने खोला और पढ़ा और पढ़ते ही मुस्कुराए। अम्मा ने पापा को इस मौके पे मुस्कुराते देखा तो आंसुओं में दो धारे और बढ़ गयी भैया हमारे मरे हैं इनको क्या दुःख ... पत्र किसी दोस्त का होगा सो हंस रहे हैं। दादी ने चिल्लाया क्या लिखा है ? बताएगा या रट के परीक्षा देना है। पापा अब भी हम बच्चों के सामने दादी से डांट खाते थे। पापा ने हड़बड़ा के कहा—मामा जी ठीक हैं.. स्वर्गवास नहीं हुआ है असल में कल उनके सर पे कौआ बैठ गया था इसलिए मरने की खबर फैला दी। कौआ असल में मौत लाता है इसलिए ऐसा किया वहां सब कुशल मंगल हैं मामा जी भी स्वस्थ हैं लिखा है कोई परेशान न होना। सबने चौन की सांस ली। मम्मी भौंचक्की–सी खड़ीं थीं जैसे यकीन न हो रहा हो तेरा भाई ठीक ठाक है लेकिन भाई गज़ब हैं भाई गज़ब हैं .... नरक भोग लिया हम सब। दादी ने चिल्लाया अरे दादी ने चिल्लाया अरे बहू हंस ले बस लिख के भेज दिया कि परेशान न होना बताओ भला मरने की खबर सुनके कौन परेशान न होगा .... खाना पीना बेहाल कर दिया। तांगा खड़ा था। हमने पूछा अम्मा से जाना नहीं है अब दादी तांगा खड़ा है। दादी ने झिड़क दिया अरे सुना नहीं बेवकूफ तेरे मामा के सर पे कौआ बैठा था अब सब ठीक है। मामा पे कौआ ? समझ नहीं आया था आज भी समझ नहीं आया कि कौआ सर पे बैठ जाए तो मौत आने वाली है और मौत की खबर फैला दी जाए तो मौत वापस चली जाती है असल में ऐसी मान्यता है या कहें ऐसा प्रचलित है गाँव और छोटे शहरों में और लोग मानते भी हैं... खैर जो भी हो मामा जी एकदम ठीक ठाक हैं।

दादी हम सब को बाहर छोड़ के खुद अन्दर जाके अपने सिंहासन पे बैठ चुकी थीं अन्दर से आवाज़ आई लाल की बहू वहीं खड़ी रहोगी या सोच रही हो अब भी मायके जाना हैं —— चलो अन्दर ... खाने पीने का इंतजाम करो हैं—— किसी ने सुबह से एक दाना नहीं डाला मुंह में .... दादी अपने पहले वाले रूप में वापस आ चुकी थी .. हम पापा का हाथ पकड़े लड़याते उनके हाथ में लटकते अन्दर आ रहे थे .... दादी वही से गुर्रायी ऐ लड़की चलो जाओ अन्दर पढ़ना लिखना है या उज्जड्डा बनके जाओगी ससुराल और हम सब की नाक कटवाओगी। पांच मिनिट के अन्दर वापिस सब बदल गया। सरहदें तय हो गयीं। ताकीतें दे दी गयीं। नियम याद दिला दिए गए। पांच घंटे में जो बदला था वो वापस वैसा हो गया जैसा था अंग्रेजी में रिवाईइन्ड हो गया सब कुछ। लेकिन जो था कुछ पलों के लिए ही सही जो भी था बहुत सुखद था और अब जो है वो उतना बुरा नहीं लग रहा था क्यूँ की पता था कि ये नियम कानून तल्खियाँ डांटना ... सब का सब अगर मुश्किल आ जाए तो बदल भी जाता था। तो सरहदें अच्छी हैं

लेकिन ये सरहदें पक्की न नहीं हैं इन्हें मौके–मौके पर मिटा दिया जाता है .. पाट दिया जाता है ... दूरियां थीं मगर दिल से दूर नहीं थे हम। दादी ने अपने लाल को आवाज दी .. लाल ये ले बेटा पूरे 10 का नोट जाके सदका दे दे किसी फकीर को ... मुसीबत टली और बोलो खिचड़ी बनाये आज, आखिर कौआ बैठा था ... छोटी बात नहीं है बला टली भैया.. पापा उठके जाने लगे तभी अन्दर से अम्मा आयीं दादी के पास और बोलीं– अम्मा ये लें आपने जाने के लिए ये रुपये दिए थे ... दादी चिढ़ गयीं– ओह हो... रख लो अपने पास लाल चूड़ियाँ ले लेना वैसे लाल चूड़ियाँ तेरे हाथ में अच्छी लगती हैं। अम्मा बिना कुछ कहे अन्दर चली गईं ... दादी ने आवाज दी भई अब खाना दे दो नहीं तो बिना कौआ सर पे बैठे हम सिधार जायेंगे। दादी हमारी पल में शोला पल माशा थी .. कभी नरम नरम कभी गरम गरम कभी गर्म नर्म..... । ◆

पता : डी–1/5, 603 यमुना नगर,
अँधेरी वेस्ट–मुंबई
मो. : 9821893069

लघुकथा

भूली बिसरी यादें

❑ डॉ. अर्चना प्रकाश

कॉलोनी के मोड़ पर लगी हुई बेंच पर एक अकेली वृद्ध महिला को मैं पिछले दस दिनों से लगातार देख रही थी। सुबह शाम दोनों वक्त टहलते समय मैं देखती की सभी टहलने वाले दोनों कानो में ईयर फोन लगाए हुए तेज रफ्तार में टहलते और चले जाते। कोई भी उन वृद्धा से सामान्य अभिवादन भी नहीं करता। बेचारी शून्य में निहारती बैठी रहती।

उस दिन मैंने उन्हें सस्नेह नमस्कार किया और उन्हीं के पास बैठ गयी। कुछ इधर–उधर की बातों के बाद मैं घर आ गयी। लगभग दो तीन दिन बाद आँटी ने स्वतः ही मुझे अपने पास बैठा लिया और बोली– बेटा बहुत परेशान है हम! बेटा बहू पसन्द की चीजें खाने नहीं देते, क्या करें ? बहुत स्नेही स्वर में मैंने पूछा– आँटी ! आप क्या खाना चाहती हैं ? मुझे लगा कि आँटी की पसंद की डिश अपने घर से बना लाएंगे और इन्हें खिला देंगे। तभी आँटी बोली–बेटा जाफरानी पत्ती तम्बाकू हम खाते है तो मन व शरीर दोनों फिट रहते हैं। लेकिन हमारे लड़का बहू हमें खाने नहीं देते और पोता–पोती भी मेरा समान खजोड़ते रहते हैं। कही भी पैकेट मिलते ही उसे फ्लश में बहा देते हैं। पेटीकोट की गुप्त जेब से बीस रुपये का नोट निकल कर मुझे देते हुए बोली–''बेटी कैसे भी कर के दो पुड़िया जाफरानी पत्ती हमें मंगा दो। कल यहीं इसी समय छिपा के दे देंना।

मैंने आँटी से बीस रुपये तो नहीं लिए, लेकिन अगले दिन शाम के समय जाफरानी पत्ती के दो सैशे लेकर उन्हें दे कर वहीं उनके पास बैठ गयी। जल्दी से पैकेट खोलकर आँटी ने तम्बाकू मुँह में डाला और उनका चेहरा खिल उठा। चमक चांदनी चेहरे से जब वो मेरी तरफ घूमी तो मेरी आँखें आँसुओं से भरी थी। आँटी परेशान हो गयी बार–बार मुझसे पूछने लगीं–''आखिर तुम्हें हुआ क्या है बेटी ? मुझे बताओ न मैं सब ठीक कर दूंगी।'' तब मैंने कहा– ''आँटी पिछले साल मेरे पापा की मृत्यु हो गयी। लेकिन मरने से पहले दो साल उनका भयानक इलाज चला। उन्हें गले का कैंसर था, तम्बाकू बहुत खाते थे। उनके इलाज में हमारा सब कुछ बिक गया। उनके गले का चार बार ऑपरेशन हुआ, फिर भी हम उन्हें बचा न सकें। 'कुछ पल रुक कर मैं पुनः बोली– ''आँटी ! हमें जायदाद व रुपयों के खत्म होने का कोई दुःख नहीं है। लेकिन जो तकलीफ चार बार के ऑपरेशन में उन्हें भोगनी पड़ी, उसे सोच कर आज भी मन काँप उठता है।'' आपके बेटे बहू आपको बेहद प्यार करते है वे आपको मौत से ज्यादा तकलीफदेह जिन्दगी से बचाना चाहते हैं। 'अब आँटी हैरान सी मेरा मुँह ताकने लगीं, मेरी एक एक बात को तौलने लगीं। सहसा ही उन्होंने मुझे गले से लगा लिया, अपने आँचल से मेरे आँसू पोंछे, फिर बोली–

''मैं अपने बेटे की कसम खा कर वादा करती हूँ इस नासपीटी तम्बाकू को अब कभी हाथ भी न लगाऊंगी।'' दोनों सैशे पेटीकोट की जेब से निकाल कर सड़क पर ही फाड़ कर फेंक दिए। मेरे कंधे पर हाथ रख कर बोली– ''मैं अपने बेटे बहू को कितना गलत समझती थी, बेटी आज तुमने मेरी आँखें खोल दी!'' आँटी जाने के लिए उठ खड़ी हुई, और जाते समय मुझसे बोली–मुझपे भरोसा करना बेटी मैं अपने बेटे की कसम कभी नहीं तोडूंगी ! आँटी चली गयी और मैं उन्हें जाते हुए देख कर महसूस कर रही थी एक अटूट भरोसा, जो अनजान होते हुए भी आँटी मुझे दे गई थी। ◆

पता : गोमती नगर, लखनऊ–10
मो. : 9450264638

अधिकार

❑ प्रवीण कुमार सहगल

पूरे गांव के बाबू साहब, यानी कि बाबू जगदीश नारायण श्रीवास्तव। रिटायर्ड जिला जज, आज निरुपाय और असहाय अवस्था में गांव की सबसे बड़ी हवेली के एक बड़े कमरे में चारपाई पर पड़े हुए थे। आरामदेह बिस्तर होते हुए भी उन्हें चारपाई पर लिटाया जाता था, यह उनका दुर्भाग्य नहीं तो और क्या था? उनकी आंखों की कोरों में अश्रु बिंदु झलक रहे थे। वे वहीं अंटके रहते हैं। हर रोज ऐसा होता है, जब रामचन्द्र उन्हें नहला–धुला कर साफ कपड़े पहना कर अपने हाथों से उन्हें खाना खिलाकर अपने घर के काम निपटाने चला जाता है।

बाबू साहब के आंसू पोंछने वाला उनका अपना कोई उनके आस–पास नहीं था। जब तक सेवा में थे, सब कुछ था उनके पास। सम्पन्नता, वैभव, सफल दाम्पत्य–जीवन, सुखी और व्यवस्थित बच्चे। दो ही लड़के थे उनके। बड़ा लड़का उनकी तरह ही प्रादेशिक न्यायिक सेवा में भर्ती होकर मिर्जापुर में मजिस्ट्रेट हो गया था। छोटे लड़के ने सिविल सेवा की तैयारी की और भारतीय राजस्व सेवा में नियुक्त होकर आजकल मुंबई में सीमा शुल्क विभाग में बतौर डिप्टी कलक्टर लगा हुआ था। दोनों के बीवी बच्चे उनके साथ ही रहते थे।

वह रिटायर हुए तो बच्चों ने कहा जरूर था कि बारी–बारी से उनके साथ रहें, परन्तु उनका दिल न माना। दो लड़कों के बीच में बंटकर कैसे रहते? एक प्रादेशिक सेवा में था तो दूसरा केन्द्र सरकार में। कोई मेल–मिलाप नहीं था। इधर–उधर दौड़ने की अपेक्षा उन्होंने एकान्त जीवन पसन्द किया और आ बसे अपने पुश्तैनी गांव में, जो अब कस्बे का स्वरूप धारण कर चुका था। चारों तरफ पक्की सड़कें बन चुकी थीं। घरों में बिजली लग चुकी थी। गांव का पुराना स्वरूप कहीं देखने को नहीं मिलता था। न गांव की चौपालें थीं, न खेत–खलिहान का जमघट, न शाम को कुएं की जगत पर लगने वाली भीड़। गांव में आधुनिकता पूरी तरह से छा गयी थी। गांव अब गांव नहीं लगता था।

पुराने कच्चे खपरैल मकान को ध्वस्त कर हवेलीनुमां मकान बनवा लिया था। पत्नी तभी जीवित थीं। वे खुद सशक्त और अपने पैरों पर चलने–फिरने लायक थे। सुबह–शाम खेतों की तरफ जाकर काम देखते थे। पिता के ज़माने से घर में काम कर रहे रामचन्द्र को अपने पास रख

लिया था। बाहर का ज्यादातर काम वही देखता था। मजदूर अलग से थे, जो खेतों में काम करते थे। दो भैंसें भी पाल ली थीं, घर में घी–दूध की कमी न रहे इसलिए।

पति–पत्नी सुख से रह रहे थे। जीवन में गम क्या होता है, तब बाबू साहब को शायद पता भी नहीं था। छुट्टियों में दोनों लड़के आ जाते थे। घर में उल्लास छा जाता। दोनों बेटों के भी दो–दो बच्चे हो गए थे। वे सब आते, तो लगता उनसे ज़्यादा सुखी और सम्पन्न व्यक्ति दुनिया में और कोई नहीं है।

परन्तु खुशियां कभी किसी एक की होकर रही हैं? पांच साल पहले पत्नी का देहान्त हो गया था। बेटे आए। तेरहवीं तक रहे। जब चलने लगे तो बेमन से कहा कि गांव में अकेले कैसे रहेंगे? बारी–बारी से उनके पास रहें। गांव की ज़मीन–जायदाद बेंच दें। यहां उसका क्या मूल्य है? परन्तु उन्होंने देख लिया था कि किस तरह बहुएं अपने पतियों से मुंह छिपाकर और ओट से बातें करके इशारा कर रहीं थीं कि बुढ़ऊ को अपने साथ रखने की कोई ज़रूरत नहीं है। आज की बहुओं की सारी हक़ीकत उन्हें ज्ञात थी। उनकी अपनी बहुएं उनसे ठीक से बात तक नहीं करती थीं। करतीं तो क्या वह स्वयं नहीं कह सकती थी कि बाबूजी चलकर आप हमारे साथ रहें। परन्तु दिल से वे नहीं चाहती थीं कि बूढे ठाठ को अपनी भरी जवानी में ढोएं और महानगर की चमकदार दुनिया को बेरंग कर दें।

खुशियां कभी किसी एक की होकर रही हैं? पांच साल पहले पत्नी का देहान्त हो गया था। बेटे आए। तेरहवीं तक रहे। जब चलने लगे तो बेमन से कहा कि गांव में अकेले कैसे रहेंगे? बारी–बारी से उनके पास रहें। गांव की ज़मीन–जायदाद बेंच दें। यहां उसका क्या मूल्य है? परन्तु उन्होंने देख लिया था कि किस तरह बहुएं अपने पतियों से मुंह छिपाकर और ओट से बातें करके इशारा कर रहीं थीं कि बुढ़ऊ को अपने साथ रखने की कोई जरूरत नहीं है। आज की बहुओं की सारी हक़ीकत उन्हें ज्ञात थी। उनकी अपनी बहुएं उनसे ठीक से बात तक नहीं करती थीं। करतीं तो क्या वह स्वयं नहीं कह सकती थी कि बाबूजी चलकर आप हमारे साथ रहें। परन्तु दिल से वे नहीं चाहती थीं कि बूढ़े ठाठ को अपनी भरी जवानी में ढोएं और महानगर की चमकदार दुनिया को बेरंग कर दें।

बेटों को उन्होंने साफ मना कर दिया कि उनमें से किसी के साथ नहीं रहेंगे। गांव से, खासकर अपनी कमाई से बनाई सम्पत्ति से उन्हें खासा लगाव हो गया था। घर छोड़कर जाने का मन न हुआ। उन्होंने मना कर दिया। बच्चे चले गये। एक बार मना करने के बाद दुबारा बच्चों ने चलने के लिए नहीं कहा। सोचते होंगे, कहीं मान न जायें। परन्तु क्या इतने बुद्धिहीन और अशक्त हैं कि दूसरों पर बोझ बन कर जीवन व्यतीत करें, चाहे उनके अपने लड़के ही क्यों न हों? वे स्वाभिमानी व्यक्ति थे। जीवन में किसी के सामने झुकना नहीं सीखा था। कभी किसी के दबाव में नहीं आए थे। आज बेटों के सामने क्यों झुकते?

घर में वह और रामचन्द्र रह गए। रामचन्द्र की बीवी आकर खाना बना जाती। जब तक वह बिस्तर पर न जाते, रामचन्द्र अपने घर न जाता। पूर्ण–निष्ठा के साथ देर रात तक उनकी सेवा में जुटा रहता। दिन भर खेतों में मजदूरों के साथ काम करता, फिर आकर घर के काम निपटाता। भैंसों को चारा–सानी करता। हालांकि उसकी बीवी भी घर के कामों में उसकी मदद करती थी, परन्तु उसका ज़्यादातर काम रसोई तक ही सीमित रहता था। बाहर के काम रामचन्द्र खुद ही निपटा लेता।

यहां तक तो सब ठीक था। बाबू साहब को मधुमेह की बीमारी थी। उसकी दवाइयां लेते रहते थे। परन्तु अचानक न जाने क्या हुआ कि उनके हाथों और पांवों में अक्सर दर्द रहने लगा। घुटनों तक पैर जकड़ जाते और हाथों की उंगलियां कड़ी हो जातीं। मुट्ठी तक न बांध पाते। सुबह नींद खुलने पर बिस्तर से तुरन्त नहीं उठ पाते थे। सारा शरीर जकड़ सा जाता। आध–पौन घण्टे तक इधर–उधर करवट बदलते, तब कहीं जाकर बिस्तर से उठने लायक हो पाते। उन्होंने पहले आस–पास ही छिटपुट इलाज करवाया। कोई फायदा नहीं हुआ तो जिला अस्पताल जाकर चेक–अप करवाया। डाक्टरों ने बताया कि नसों के टिशूज़ मरते जा रहे हैं। नियमित टहलना, व्यायाम करना, कुछ चीजों से परहेज़ करना और नियमित दवाइयां खाने से फायदा हो सकता है। कोई गारण्टी नहीं थी। फिर भी डाक्टरों का कहना तो मानना ही था।

जब जिला अस्पताल में भर्ती थे तो दोनों बेटे एक–एक करके आए और डाक्टरों से परामर्श करके तथा रामचन्द्र को हिदायतें देकर चले गए। किसी ने छुट्टी लेकर उनके पास रहना जरूरी नहीं समझा। उनकी बीवियां तो आई भी नहीं। बताया गया कि बच्चों की परीक्षाएं पर थीं, उनकी पढ़ाई का हर्ज़ा होता। इसलिए नहीं आईं। उन्हें सुनकर धक्का सा लगा। क्या बुढ़ापे में अपने सगे ऐसे ही हो जाते हैं। वे जवान हैं, अतएव उन्हें बुढ़ापा क्या होता है, इसका एहसास नहीं है। या वे समझने की कोशिश

नहीं करते कि बूढ़े लोगों की क्या परेशानियां होती हैं और उन्हें कैसे दूर किया जाये।

कुछ दिन अस्पताल में भर्ती रहकर वह गांव आ गए। इलाज चल ही रहा था। परन्तु कोई फायदा होता नज़र नहीं आ रहा था। उनके पैर धीरे–धीरे सुन्न और अशक्त होते जा रहे थे। रामचन्द्र उन्हें पकड़ कर उठाता, तभी बिस्तर से उठकर बैठ पाते। चलना–फिरना दूभर होने लगा। उन्होंने बड़े बेटे को लिखा कि वहीं आकर उनको लखनऊ के के.जी.एम.सी. या संजय गांधी इन्स्टीट्यूट में दिखा दे। बड़ा लड़का आया तो जरूर और उन्हें के.जी.एम.सी में भर्ती भी करवा गया। परन्तु इसके बाद कुछ नहीं। भर्ती करवाकर चला गया। रामचन्द्र को बोल गया कि जब तक इलाज चले, वहीं रहे। उसकी बीवी को भी लखनऊ में छोड़ दिया। बेचारे गरीब अनपढ़ आदमी। किस तरह उन्होंने बाबू साहब की देखभाल की और कितने प्रकार के कष्ट उन दोनों ने खुद सहे, उनके सिवा भगवान भी न जानता होगा। बाबू साहब तो ख़ैर निःसहाय ही थे। वह कुछ कहने या करने की स्थिति में ही नहीं थे। रामचन्द्र उनके लिए भगवान था।

रामचन्द्र अपनी बीवी के साथ तन–मन से बाबू साहब की सेवा में लगा रहा। धन तो बाबू साहब लगा ही रहे थे। उसकी कमी उनके पास नहीं थी। परन्तु न जाने उनके मन में कैसी निराशा घर कर गई थी कि किसी इलाज का उन पर असर ही नहीं हो रहा था। अपनों के होते हुए भी उनका अपने पास न होने का एहसास उन्हें अन्दर तक साल रहा था। यह दुःख उनके इलाज में बाधक था और डाक्टरों की लाख कोशिश के बावजूद वह ठीक न हो सके और लखनऊ से वह अपाहिज होकर ही गांव लौटे।

अब स्थिति यह हो गई थी कि बाबू साहब चारपाई से उठने में भी अशक्त हो गये थे। अपने आप उठ भी न पाते थे। रामचन्द्र अभी अधेड़ था। शरीर से बलवान तो था ही। अपने बूते पर उन्हें उठाकर बिठा देता था तो वह तकियों के सहारे या बिस्तर पर पैर लटका कर बैठे रहते थे।

एक दिन नौबत ये आ गई कि वह पाखाने में बैठने में भी अशक्त हो गये। उन्हें बिस्तर से उतारकर चारपाई पर डालना पड़ा। बीचो–बीच चारपाई के बान का एक गोल हिस्सा काट दिया गया। नीचे एक बड़ा बर्तन रख दिया गया, ताकि बाबू साहब उस पर मल–मूत्र त्याग कर सकें।

रामचन्द्र भी जीवट का आदमी था। जाति का लोध, परन्तु कोई घिन व अनिच्छा नहीं। पूरी लगन, निष्ठा और निःस्वार्थ भाव से उनका मल–मूत्र उठाकर बाहर फेंकने जाता। बाबू साहब ने उसे कई बार मना किया कि खुद वह यह काम न किया करे। गांव में मेहतरों की कमी नहीं थी। कई घर थे उनके। बुलाने पर सभी दौड़े चले आते। रामचन्द्र से कहा कि वह कोई मेहतर बुला लिया करे। सुबह–शाम आकर गंदगी साफ कर दिया करेगा, परन्तु रामचन्द्र, चाहे उसकी ढिठाई कह लें, ने बाबू साहब की बातों को अनसुना कर दिया और खुद ही उनका मल–मूत्र साफ करता रहा। उन्हें नहलाता–धुलाता और साफ–सुथरे कपड़े पहनाता। उसकी बीवी उनके गन्दे कपडे धोती, उनके लिए खाना बनाती। रामचन्द्र खुद स्नान करने के बाद उन्हें अपने हाथों से खाना खिलाता। अपने सगे बहू–बेटे क्या उनकी इस तरह सेवा करते? शायद नहीं। कर भी नहीं सकते थे। वह मन ही मन सोचते।

रामचन्द्र भी जीवट का आदमी था। जाति का लोध, परन्तु कोई घिन व अनिच्छा नहीं। पूरी लगन, निष्ठा और निःस्वार्थ भाव से उनका मल–मूत्र उठाकर बाहर फेंकने जाता। बाबू साहब ने उसे कई बार मना किया कि खुद वह यह काम न किया करे। गांव में मेहतरों की कमी नहीं थी। कई घर थे उनके। बुलाने पर सभी दौड़े चले आते। रामचन्द्र से कहा कि वह कोई मेहतर बुला लिया करे। सुबह–शाम आकर गंदगी साफ कर दिया करेगा, परन्तु रामचन्द्र, चाहे उसकी ढिठाई कह लें, ने बाबू साहब की बातों को अनसुना कर दिया और खुद ही उनका मल–मूत्र साफ करता रहा। उन्हें नहलाता–धुलाता और साफ–सुथरे कपड़े पहनाता। उसकी बीवी उनके गन्दे कपडे धोती, उनके लिए खाना बनाती। रामचन्द्र खुद स्नान करने के बाद उन्हें अपने हाथों से खाना खिलाता। अपने सगे बहू–बेटे क्या उनकी इस तरह सेवा करते? शायद नहीं। कर भी नहीं सकते थे। वह मन ही मन सोचते।

बाबू साहब उदास मन लेटे–लेटे जीवन की सार्थकता पर विचार करते। मनुष्य क्यों लम्बे जीवन की आकांक्षा करता है, क्यों वह केवल बेटों की कामना करता है? लम्बा जीवन क्या सचमुच सुखदायक होता है? बेटे क्या सचमुच मनुष्य को कोई सुख प्रदान करते हैं? उनके अपने बेटे अपने जीवन में व्यस्त और सुखी हैं। अपने जन्मदाता की तरफ से निर्लिप्त होकर अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं, जैसे अपने पिता से उन्हें कुछ लेना–देना नहीं है। और एक तरफ रामचन्द्र है, उसकी बीवी है। इन दोनों से उनका क्या रिश्ता है? उन्हें नौकर के तौर पर ही तो

रखा था उन्होंने, परन्तु क्या वह नौकर से बढ़कर नहीं हैं? वह तो उनके अपने सगे बेटों से भी बढ़कर हैं। बेटे–बहू अगर साथ होते, तब भी उनका मल–मूत्र नहीं छूते। पास तक न फटकते। तब क्या रामचन्द्र उनके लिए भगवान स्वरूप नहीं है?

जब से वह पूरी तरह अशक्त हुए हैं, रामचन्द्र अपने घर नहीं जाता। अपनी बीवी के साथ बाबू साहब के मकान में ही रहता है। उन्होंने ही उससे कहा था कि रात–बिरात पता नहीं कब क्या जरूरत पड़ जाए? वह भी मान गया। घर में उसके बच्चे अपनी दादी के साथ रहते थे। दोनों पति–पत्नी दिन रात बाबू साहब की सेवा में लगे रहते थे। भैंसों का दूध बाबू साहब के लिए बचाकर बाकी अपने घर भेज देता। खेतों में कितना गल्ला–अनाज पैदा हुआ, कितना बिका और कितना घर में बचा है, इसका पूरा–पूरा हिसाब भी रामचन्द्र ही रखता था। पैसे भी वहीं तिजोरी में रखता था। बाबू साहब बस पूछ लेते कि कितना क्या हुआ? बाकी माया–मोह से वह भी अब छुटकारा पाना चाहते थे। उसकी तरफ ज्यादा ध्यान न देते। रामचन्द्र को बोल देते कि उन्हें कुछ बताने की जरूरत नहीं है। उसे जो करना हो, करता रहे। रुपये–पैसे खर्च करने के लिए भी मना नहीं करते थे। जोर देकर कहते कि वह अपने घर के सामान के लिए पैसे निकाल लिया करे। बच्चों को कपड़े–लत्ते बनवा दिया करे। तो भी रामचन्द्र उनका कहना कम ही मानता था। बाबू साहब का पैसा अपने घर में खर्च करते समय उसका मन कचोटता था। हाथ खींचकर खर्च करता। बेकार में एक पाई भी खर्च न करता। ज्यादातर पैसा उनकी दवाइयों पर ही खर्च होता था। उसका वह पूरा–पूरा हिसाब रखता था।

बीती रात तक उन्हें नींद न आती। रामचन्द्र उनके पास ज़मीन पर बैठा रहता। वे कहते, "रमुआ, ये जीवन क्या है? क्या कभी किसी की समझ में आया है? नहीं, इसे कोई नहीं समझ पाया है। हम सभी मिथ्या भ्रम में जीते हैं। कहते हैं कि ये हमारा है, धन–सम्पदा, बीवी–बच्चे, भाई–बहन, बेटी–दामाद, नाती–पोते। परन्तु क्या सचमुच ये सब आपके अपने हैं? नहीं रे रमुआ, कोई किसी का नहीं होता। सब अपने–अपने स्वार्थ के लिए जीते हैं और मिथ्या भ्रम में पड़कर खुश हो लेते हैं कि ये सब हमारा है। अपने अहम् की तुष्टि करके खुश होते हैं।" और वह एक आह् भरकर चुप हो जाते।

रामचन्द्र मनुहार भरे स्वर में कहता, "मालिक, आप मन में इतना दुःख मत पाला कीजिए। हम तो आपके साथ हैं, आपके चाकर। हम आपकी सेवा मरते दम तक करेंगे और करते रहेंगे। आपको कोई कष्ट–तकलीफ नहीं होने देंगे।"

"हां रे रमुआ, एक तेरा ही तो आसरा रह गया है, वरना तो कब का इस असार संसार से कूच कर गया होता। इस लाचार–बेकार और अपाहिज शरीर के साथ कितने दिन जीता। यह सब तेरी सेवा का फल है कि अभी तक संसार से मोह समाप्त नहीं हुआ है। अब तुम्हारे सिवा मेरा है ही कौन? लड़के आने का नाम ही नहीं लेते। अब तो छुट्टियों में भी इधर का रुख नहीं करते। पहाड़ों पर चले जाते हैं बच्चों के साथ मौज–मस्ती करने। इधर आकर बूढ़े लाचार बाप की सेवा करने के लिए क्यों आएं? बच्चे उनके बड़े हो गए हैं। शहर में पैदा हुए, वहीं बडे हुए। उनको गांव क्यों अच्छा लगेगा? बाप को बेटे के सुख के लिए ही सब कुछ करना पड़ता है। मैंने भी अपनी जवानी में उन्हीं के लिए सब कुछ किया था। अब वह अपने बच्चों के लिए कर रहे हैं तो मुझे गिला नहीं करनी चाहिए। परन्तु बूढ़ा मन, स्वार्थी तो होता ही है कि कुछ दिन के लिए ही आ जाते। देखकर मन भर जाता। परन्तु नहीं। उनको गर्मी में कुल्लू–मनाली की शीतल वादियों में सैर करने दीजिए। यहां आकर मेरे शरीर पर भिनकती हुई मक्खियां थोड़े उड़ाएंगे। मुझे अपने बेटों से कोई आशा या उम्मीद नहीं है कि मरते समय मेरे मुख में गंगाजल की दो बूंदें डालेंगे। एक तेरे ऊपर ही मुझे विश्वास है कि जीवन के अन्तिम समय तक तू मेरा साथ देगा। अब तक निःस्वार्थ–भाव से मेरी सेवा करता आ रहा है। बंधी–बंधाई मजदूरी के सिवा और क्या दिया है मैंने? बस कभी–कभार घी–दूध और अन्न ही तो ले जाता है मेरे यहां से। वह भी तो पेट भरने के लिए जरूरी है। मेरे पैसे से तू कोई विलासिता तो नहीं कर रहा है, फिर भी सेवा में लगा हुआ है।"

"मालिक, आपकी दया–दृष्टि बनी रहे और मुझे क्या चाहिए? दो बेटे हैं, बडे हो चुके हैं, कहीं भी कमा खा लेंगे। एक बेटी है, उसकी शादी कर दूंगा। वह भी अपने घर की हो जाएगी। रहा मैं और पत्नी तो अभी आपकी छत्रछाया में गुजर–बसर हो ही रही है। आपके न रहने पर आवंटन में जो दो बीघा ऊसर–बंजर मिला है, उसी पर मेहनत करूंगा, उसे उपजाऊ बनाऊंगा और पेट के लिए कुछ न कुछ तो पैदा कर ही लूंगा।"

"तेरी बेटी कितनी बड़ी हो गयी है?"

"चौदह साल की हो गयी है। एक दो बरस में शादी लायक हो जाएगी। लड़का देख रहा हूं। अच्छा घर–वर मिलते ही उसके हाथ पीले कर दूंगा। ◆

डी–1209 डबुआ कालोनी, फरीदाबाद–121001 (हरियाणा)
मो. : 9871346063

किरायेदार माँ–बाप

❑ प्रियंका पाठक

चंदनबेटा! खाना क्यों नहीं खाया तुमने? तुम्हारी मां बता रही थी कि तुम नाराज़ हो इसलिए खाना नहीं खा रहे हो। चलो मैं तुम्हें अपने हाथों से खिलाता हूं।

"नहीं पापा मैं खाना नहीं खाऊंगा मुझे भूख नहीं है। मां जब देखो मुझे ही डांटती रहती हैं। नंदू को कभी नहीं डांटती। हमेशा उसी के पसंद का खाना बनाती है। अब आज मैंने खीर बनाने के लिए बोला तो सेंवई बना दी उन्होंने। क्योंकि नंदू को सेंवई ही पसंद है।''

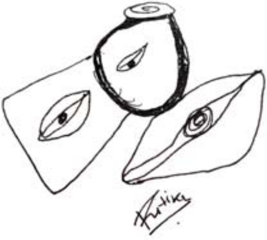

"तुम्हें कैसे पता कि तुम्हारी मां ने खीर नहीं बनाई होगी। उन्होंने तुम्हारी मनपसंद खीर और रसमलाई भी बनाई है जो तुम्हें सरप्राइज देना चाहती थी। चंदू बेटा मां भी तुम्हें बहुत प्यार करती हैं। बस तुम बड़े हो तो तुम्हें समझदार बनाना चाहती हैं, इसीलिए कभी–कभार तुम्हें डांट देती है। अच्छा यह बताओ। तुमने नंदन से झगड़ा क्यों किया? कितनी बार तुम्हें समझाया है कि झगड़ा करना अच्छी बात नहीं है। तीनों भाई–बहन में तुम सबसे बड़े हो,तुम्हें तो उनके साथ मिलजुल कर रहना चाहिए।''

"नहीं पापा मैंने झगड़ा नहीं किया नंदन और मम्मी केवल मेरी शिकायत करते रहते हैं। पूरी बात तो आपको बताते नहीं आप सुगंधा से पूछ लें। नंदन मुझसे मेरी पतंग उड़ाने के लिए मांगता तो मैं दे देता लेकिन उसने मेरी चार पतंगफाड़ दी, तो मैं क्या करता? संधू भी तो मेरे साथ पतंग उड़ा रही थी (सुगंधा को सभी प्यार से संधू कहते थे)। उसे तो कभी मुझसे शिकायत नहीं रहती। नंदूखुद बदमाशी करता है और सारा इल्ज़ाम मुझ पर लगा देता है। आप ही बताइए ना कितनी आरजू–मिन्नत के बाद आपने मुझे पतंग खरीदने के लिए पैसे दिए थे।''

"ठीक है बेटा! तुम्हारी बात भी अपनी जगह सही है, लेकिन तुम ही सोचो रोज–रोज

तुम्हें नई पतंग चाहिए वह भी एक–दो नहीं बल्कि पांच। इसीलिए मैं आनाकानी करता हूं तुम्हें पतंग दिलवाने में।''

"क्या करूं पापा हमेशा मेरी पतंग कट जाती है, तो इसीलिए मैं पांच पतंग एक साथ ले लेता हूं। एक कटी तो दूसरी उड़ा लूंगा। चंदू ने मुंह बनाते हुए कहा।''

श्याम सुंदर बाबू ने कहा, "चलो कोई बात नहीं। झगड़ा नहीं करना चाहिए। तुमको मुझे बताना चाहिए था, नई पतंग के लिए पैसे दे देता। यू आर ए गुड ब्वाय।" छोटे भाई से झगड़ा नहीं करते बेटा। तुम तो बड़े हो।"

सॉरी पापा।" यह कहते हुए चंदन ने अपने पापा के हाथों से अपनी मनपसंद खीर खाई और फिर सोने चला गया। धीरे–धीरे बच्चे बड़े होने लगे। तीनों काफी समझदार एवं मेहनती थे। इन बच्चों में चंदन अपने पापा के दिल के काफी करीब था क्योंकि वह बहुत आज्ञाकारी था। जबकि सुगंधा उनकी लाड़ली थी और छोटा वाला तो सबसे नटखट सबका प्यारा–दुलारा था ही। बड़े बेटे के बाद संधू ने भी बहुत कम उम्र में ही बैंक की नौकरी ज्वाइन कर ली थी। चंदन के लिए बहुत अच्छे रिश्ते भी आने लगे। कोई लड़की बैंक में जॉब करती थी, कोई शिक्षिका थी, कोई सॉफ्टवेयर इंजीनियर तो कोई असिस्टेंट प्रोफेसर थी। इतनी सारी लड़कियों में गायत्री उन्हें पसंद आई जो कि कॉलेज में पढ़ाती थी। बड़े धूमधाम से उन्होंने अपने बड़े बेटे चंदन की शादी गायत्री से कर दी। शादी के दिन श्याम सुंदर बाबू घर–परिवार के बारे में तरह–तरह के सपने संजो रहे थे। घर में पहली शादी थी इसलिए वह बहुत खुश थे। नंदन ही शादी की सारा व्यवस्था संभाले हुए था। बैंड की धुन पर उसने अपने दोस्तों के साथ बड़े भैया की शादी में खूब धमाल मचाया। सुगंधा ने भी शादी में अपने कॉलेज के और कुछ बैंक के दोस्तों को बुलाया था। दोनों भाई–बहन अपने दोस्तों के साथ मिलकर भाभी गायत्री से हंसी–मज़ाक और चुहलबाजी करने का कोई मौका नहीं छोड़ना चाहते थे। केरल से आए उसके दोस्तों ने भी खूब इंजॉय किया। नंदन केरल से इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर रहा था। अभी फाइनल ईयर में ही था कि उसका भी कैंपस सलेक्शन हो गया। बहुत बढ़िया पैकेज मिला था। बड़े बेटे और बेटी की नौकरी के बादअब छोटे बेटे की नौकरी लग जाने की खबर सुनते ही श्याम सुंदर बाबू के दोस्तों ने पार्टी की मांग की तो उन्होंने पार्टी देने का मन बना साथ ही अपने सभी सगे संबंधियों को भी सूचना देकर पार्टी में सम्मिलित होने के लिए बुलाया। जो मिलता उससे बोलते भाई अब सुगंधा बची है, बेटी की शादी किसी अच्छे लड़के से कर दे तो उऋण हो जाए। फिर आगे की सोचेंगे।

समय बीतता गया। नंदन एक बड़ी कंपनी में मैनेजिंग डायरेक्टर बन गया। श्याम सुंदर बाबू बेटों से निश्चिंत होकर सुगंधा की शादी की तैयारियों में जुट गए। उन्होंने कई लड़कों को सुगंधा के लिए देखा लेकिन वह चाहते थे कि सुगंधा बैंक में है तो कोई बैंक अधिकारी मिल जाए तो ज्यादा अच्छा है। कई लोगों से उन्होंने इस बाबत चर्चा भी की था। कई साल बाद अचानक एक दिन उनकी मुलाकात अपने पुराने मित्र प्रोफेसर बी.एन. सिंह से हो गई। दोनों बिछड़े मित्रों में घर परिवार की बहुत सारी बातें हुई। इसी क्रम में बच्चों की पढ़ाई–लिखाई, नौकरी शादी–ब्याह की भी बातें हुई तो उन्हें पता चला कि प्रोफेसर साहब का मंझला बेटा भी पंजाब नेशनल बैंक में ही है। उसी बैंक में सुगंधा भी थी। दोनों ने तय किया कि क्यों न अपनी दोस्ती को रिश्तेदारी में बदल दी जाए?

समय बीतता गया। नंदन एक बड़ी कंपनी में मैनेजिंग डायरेक्टर बन गया। श्याम सुंदर बाबू बेटों से निश्चिंत होकर सुगंधा की शादी की तैयारियों में जुट गए। उन्होंने कई लड़कों को सुगंधा के लिए देखा लेकिन वह चाहते थे कि सुगंधा बैंक में है तो कोई बैंक अधिकारी मिल जाए तो ज्यादा अच्छा है। कई लोगों से उन्होंने इस बाबत चर्चा भी की था। कई साल बाद अचानक एक दिन उनकी मुलाकात अपने पुराने मित्र प्रोफेसर बी.एन. सिंह से हो गई। दोनों बिछड़े मित्रों में घर परिवार की बहुत सारी बातें हुई। इसी क्रम में बच्चों की पढ़ाई–लिखाई, नौकरी शादी–ब्याह की भी बातें हुई तो उन्हें पता चला कि प्रोफेसर साहब का मंझला बेटा भी पंजाब नेशनल बैंक में ही है। उसी बैंक में सुगंधा भी थी। दोनों ने तय किया कि क्यों न अपनी दोस्ती को रिश्तेदारी में बदल दी जाए? उन्होंने अपने मित्र

प्रोफेसर बी.एन. सिंह के बेटे सौरव राज से बहुत ही धूमधाम से सुगंधा की शादी कर दी। सभी मित्रों और रिश्तेदारों ने शादी में बढ़ चढ़कर भाग लिया। गायत्री ने भी ननद की शादी में कोई कमी न होने दी।

नंदन ने अपनी कमाई से उपहार स्वरूप एक डायमंड का सेट और हनीमून ट्रिप का पैकेज दिया। सुगंधा विदा होकर अपने ससुराल चली गई। श्याम सुंदर बाबू को लगा कि उन्होंने चार धाम की यात्रा कर ली। श्याम सुंदर बाबू ने बच्चों की परवरिश बहुत ही मेहनत से और पेट काटकर की थी। अपनी सारी सुख–सुविधाओं का त्याग कर एक–एक पैसा उनके लिए जोड़ा था। बच्चे सेटल हो गए तो उन्हें लगा कि उनका दायित्व पूरा हो गया और आगे का जीवन अब आराम से कटेगा। उन्होंने अपनी पत्नी सावित्री के साथ मिलकर रिटायरमेंट का प्लान बनाना शुरू कर दिया था। उन दोनों ने विचार किया कि अब बहुत हो गया सरकारी क्वार्टर में रहना। रिटायरमेंट के बाद उसे खाली करना ही पड़ेगा तो रहने के लिए अब अपना घर जरूरी हो गया है। अपने खुद के घर में बेटे–बहुओं के साथ अपनी बाकी जिंदगी चैन से काट देंगे। नंदन के लिए भी बहुत अच्छे–अच्छे रिश्ते आ रहे थे। लेकिन उनकी बड़ी बहू गायत्री जिद पर अड़ी थी कि मेरे मामा की बेटी नंदिनी से ही नंदन की शादी होनी चाहिए। जबकि सावित्री जी चाहती थी कि नंदन की शादी उनकी सखी माधुरी की बेटी काजल से हो लेकिन गायत्री के आगे उनकी एक न चली। मजबूरन नंदिनी से नंदन की शादी करनी पड़ी।

रिटायरमेंट के बाद श्याम सुंदर बाबू ने अपना सारा पैसा जमीन खरीदने में ही लगा दिया। दोनों बेटों के सहयोग से दो मंजिला मकान भी बनकर तैयार हो गया। बड़े बेटे चंदन ने अपने नाम से ही रजिस्ट्री करवाई। क्योंकि मकान बनवाने में ज़्यादा खर्च उसका लगा था। इसलिए श्यामसुंदर बाबू ने कोई आपत्ति नहीं जताई। बड़े धूमधाम से उन्होंने गृह प्रवेश किया। श्याम सुंदर बाबू और सावित्री जी को अब अपना जीवन सार्थक लग रहा था क्योंकि अपने सभी दायित्वों का निर्वाह उन्होंने कर दिया था। सावित्री जी ने कहा कि, "प्रभु से प्रार्थना है कि बाकी का जीवन उनकी सेवा और सत्संग में गुजरे।''

रिटायरमेंट के बाद श्याम सुंदर बाबू ने अपना सारा पैसा ज़मीन खरीदने में ही लगा दिया। दोनों बेटों के सहयोग से दो मंजिला मकान भी बनकर तैयार हो गया। बड़े बेटे चंदन ने अपने नाम से ही रजिस्ट्री करवाई। क्योंकि मकान बनवाने में ज्यादा खर्च उसका लगा था। इसलिए श्यामसुंदर बाबू ने कोई आपत्ति नहीं जताई। बड़े धूमधाम से उन्होंने गृह प्रवेश किया। श्याम सुंदर बाबू और सावित्री जी को अब अपना जीवन सार्थक लग रहा था क्योंकि अपने सभी दायित्वों का निर्वाह उन्होंने कर दिया था। सावित्री जी ने कहा कि, "प्रभु से प्रार्थना है कि बाकी का जीवन उनकी सेवा और सत्संग में गुजरे।''

छुट्टियों में नंदन भी घर पर आया हुआ था। नंदिनी प्रेग्नेंट थी। श्याम सुंदर बाबू और सावित्री जी चाहते थे कि सभी परिवारएक साथ रहे। उन दोनों ने चंदन को बुलाया और कहा कि, "बेटे मैं चाहता हूं कि तुम दोनों का परिवार एक साथ ही रहे।

नंदन ने भी कहा कि "ठीक है पापा जैसा आप उचित समझें। वैसे भी तो भैया की नौकरी इसी शहर में है। बढ़िया रहेगा सभी लोग साथ रहेंगे तो आप लोगों की सेवा भी होगी और बच्चों से आप लोगों का मन भी लगा रहेगा। आराध्या और अध्यात्म भी तो आप दोनों के बगैर रह नहीं पाते हैं। मैं भी चाहता हूं कि मेरा पहला बच्चा आप लोगों के सान्निध्य में ही पैदा हो और दादा–दादी के आशीर्वाद से फले–फूलें।"

श्याम सुंदर बाबू बोले, "कितना! समझदार है तू नंदू। आज सीना चौड़ा हो गया तेरी बातों से।" जब ज्यादा प्यार दिखाना होता था तो नंदू–चंदू नाम से ही अपने बच्चों को बुलाते थे।

इधर कोरोना नामक महामारी ने अपने पांव पसारने शुरू कर दिए थे। इस वायरस ने सभी की जिंदगी में उथल–पुथल मचा रखा था। इधर कुछ दिनों से गायत्री और नंदिनी में खटपट शुरू हो गई थी। क्योंकि घर में काम करने वाले रामू काका अपनी बीमार मां से मिलने गांव चले गए थे। काम को लेकर दोनों में सुबह से ही झगड़ा शुरू हो जाता। इस वजह से श्याम सुंदर बाबू और सावित्री जी चिंतित रहने लगे। बात यहां तक पहुंच गई कि चंदन ने उनसे पूछे बगैर घर बेच दिया। ज़मीन उसके नाम जो थी। जो पैसे मिले

उससे अपने लिए नया घर खरीद लिया। उसके बूढ़े मां–बाप कैसे रहेंगे उससे उसे कोई मतलब नहीं था।

श्याम सुंदर बाबू और उनकी पत्नी इस पूरे प्रकरण से अनजान थे। उन्हें जब घर खाली करने का नोटिस मिला तब पता चला कि घर तो बिक चुका है। उन्होंने कोर्ट में बड़े बेटे के खिलाफ केस कर दिया। परिवार के सभी लोग परेशान रहने लगे। पंचायत हुई। लोकलाज का हवाला देकर लोगों ने श्याम सुंदर बाबू से मुकदमा वापस लेने का दबाव बनाया। वो राजी भी हो गए। इसी बीच एक और धोखा उनका इंतजार कर रहा था। नंदन आया और इस प्रकरण पर मौन रहा। मां–बाप का कुशल–क्षेम पूछे बगैर नंदनी को लेकर जहां नौकरी करता था चला गया। इसी गम में उनकी पत्नी भी बीमार रहने लगी। इस कोरोना काल में श्याम सुंदर बाबू बिल्कुल अकेले पड़ गए। अपने घर से बेघर। घर में काम करने वाले रामू काका भी अभी तक अपने गांव से नहीं लौटे थे। और सावित्री जी से घर का काम होता नहीं था। ऊपर से वह बीमार पड़ गई क्योंकि बेटों के विश्वासघात ने उन्हें बिल्कुल तोड़ दिया था। बड़े बेटे के घर में उन लोगों के लिए जगह नहीं थी। वह तो भला हो पंकज कुमार झा का जिन्होंने उनका मकान खरीदा था, और उसी में जिस फ्लोर पर वे रहते थे उन्हें रहने के लिए दे दिया। वह तो किराया भी नहीं ले रहे थे लेकिन श्यामसुंदर बाबू नहीं माने। उन्हें बिना किराया दिए रहना मंजूर नहीं था। वो बोले, "पंकज बेटा यह आपका बड़प्पन है कि मकान खरीदने के बाद भी जिसमें हम रहते थे आपने उसी फ्लोर को हमें रहने के लिए दिया। इसके लिए आपका तहे दिल से शुक्रिया। जब अपनों ने मुंह मोड़ लिया तो आपने हमें रहने के लिए आश्रय दिया। आपका एहसान हम कैसे चुका पाएंगे।"

इस कोरोना काल में श्याम सुंदर बाबू बिल्कुल अकेले पड़ गए। अपने घर से बेघर। घर में काम करने वाले रामू काका भी अभी तक अपने गांव से नहीं लौटे थे। और सावित्री जी से घर का काम होता नहीं था। ऊपर से वह बीमार पड़ गई क्योंकि बेटों के विश्वासघात ने उन्हें बिल्कुल तोड़ दिया था। बड़े बेटे के घर में उन लोगों के लिए जगह नहीं थी। वह तो भला हो पंकज कुमार झा का जिन्होंने उनका मकान खरीदा था, और उसी में जिस फ्लोर पर वे रहते थे उन्हें रहने के लिए दे दिया। वह तो किराया भी नहीं ले रहे थे लेकिन श्यामसुंदर बाबू नहीं माने। उन्हें बिना किराया दिए रहना मंजूर नहीं था। वो बोले, "पंकज बेटा यह आपका बड़प्पन है कि मकान खरीदने के बाद भी जिसमें हम रहते थे आपने उसी फ्लोर को हमें रहने के लिए दिया। इसके लिए आपका तहे दिल से शुक्रिया। जब अपनों ने मुंह मोड़ लिया तो आपने हमें रहने के लिए आश्रय दिया। आपका एहसान हम कैसे चुका पाएंगे।"

"एहसान चुकाने का एक तरीका है यदि आप बुरा ना माने तो", पंकज जी ने नम्रता के साथ कहा।

"आप दोनों का खाना मेरे ही घर से आएगा। ऐसी हालत में माता जी खाना कैसे बनाएंगी।"

"नहीं–नहीं पंकज बेटा जब तक रामू नहीं आ जाता तब तक मैं कोई और दूसरे नौकर का इंतजाम कर लूंगा और मुझे पेंशन तो मिलती ही है।"

"जब तक रामू नहीं आ जाता तब तक आप मेरे यहां ही खाना खाएंगे। इस कोरोना काल में आपको कोई नौकर–नौकरानी कहां मिलेगा।"

उन दोनों ने पंकज जी की बात मान ली। अपने ही घर में उन्होंने एक फ्लैट किराए पर ले रखा है, उसी में दोनों प्राणी चुपचाप रहते हैं। यह उनकी बदकिस्मती है कि जिस घर के कभी मालिक हुआ करते थे उसी घर में किराएदार बनकर रह रहे हैं।

पत्नी भी कोरोना काल में भगवान को प्यारी हो गई। बड़े बेटे को उन्होंने खबर भेजवाया लेकिन वह अपनी मां की अर्थी को कंधा देने तक नहीं आया। बेटी सुगंधा तो विदेश चली गई थी, वह चाह कर भी नहीं आ पाई। नंदन तो सात आठ सौ किलोमीटर दूर रहता है। लेकिन उसने भी अपने पिता से नाता तोड़ लिया है। बेचारे श्याम सुंदर बाबू 80 साल की अवस्था में निस्सहाय अकेले रह गए हैं। वह तो भला हो पंकज बाबू का जिन्होंने उनका मकान खरीदा और जिसके वह किराएदार हैं। वही इनकी देखभाल करते हैं। ◆

पता : संजय गांधी नगर, रोड नं.–10ए, हनुमान नगर, पटना–800026 बिहार

मो. : 8210781949

अंतिम यात्रा

❑ रेनू सैनी

प्रशंसा एक कोने में मूक सी बैठी हुई थी। समीप ही मां उर्मिला थी, जिसकी आंखों से आंसू बिल्कुल सूख चुके थे। एक अजीब सी नीरवता उन आंखों में झलक रही थी। सुबह के तीन बजे थे। पौ फटने वाली थी। सामने रखे शव पर दोनों की नज़र जाती और दोनों एक दूसरे के गले लगकर रो पड़तीं। दो कमरों के छोटे से मकान में एक ओर पण्डित दीनानाथ का शव पड़ा था। रात एक बजे अचानक दिल का दौरा पड़ने पर वह अपनी पत्नी उर्मिला और एकमात्र संतान प्रशंसा को पीछे छोड़ गए थे।

निर्मला और प्रशंसा दोनों ही सुबह का इंतजार करते हुए अतीत के झरोखों में झांक रही थीं। प्रशंसा बीस वर्ष की युवती थी। पिता दीनानाथ ने अपनी बेटी को जिंदगी की हर बाधा और मुसीबत से लड़ना सिखाया था। वह इस बात को नहीं मानते थे कि पण्डित का काम दूसरों से लेना और खाना होता है। उल्टा वह स्वयं अनेकों को भोजन खिलाते और उनकी मदद करते। चौराहे पर सब्जी बेचने वाले से लेकर बड़ी से बड़ी दुकान के लोग दीनानाथ के स्वभाव और उनके अंदाज के कायल थे।

कई बार उर्मिला और दीनानाथ में अक्सर ठन जाती थी। उर्मिला कहती थी, 'आप के पास वैसे तो कुछ है ही नहीं। लेकिन जो भी थोड़ा–बहुत कमाते हो, उसे दूसरों पर लुटा देते हो। कम से कम मेरा नहीं तो अपनी बेटी का ख्याल तो करो।' इस पर दीनानाथ मुस्करा कर कहते, 'अरे, प्रशंसा के लिए तुम परेशान क्यों होती हो? उसे मैंने ऐसे संस्कार दिए हैं कि वह जीवन भर प्रशंसा बटोरेगी और अपने जीवन को आनंदपूर्वक जिएगी।' उर्मिला कहती, 'लेकिन प्रशंसा और आनंद के अलावा जीवन में रोटी की आवश्यकता भी होती है। भोजन जुटाने के लिए पैसों का होना जरूरी है।' दीनानाथ का फिर वही जवाब होता, 'अरे भई, हमें इतने पैसों का क्या करना है? व्यक्ति की आवश्यकताएं इतनी होनी चाहिए कि वह अपनी कमाई से दूसरों की भी मदद कर सके। इससे उसका जीवन महान और विशाल बनता है।

दीनानाथ की बेटी प्रशंसा बचपन से ही तीक्ष्ण बुद्धि की थी। वह हर कक्षा में न सिर्फ प्रथम

आती थी, बल्कि अन्य गतिविधियों में भी आगे रहती थी। गणित में वह बहुत अच्छी थी। वह गणित की प्रोफेसर बनना चाहती थी। अक्सर वह दीनानाथ से कहती, 'पिताजी, देखना जब मैं गणित की प्रोफेसर बनूंगी तो आपकी क्लास भी लिया करूंगी। इस पर दीनानाथ कहते, 'अपनी बेटी का विद्यार्थी बनकर मुझे बहुत खुशी होगी।' इस प्रकार सीमित साधनों में भी दीनानाथ हर हाल में खुश रहते थे। बेटी बिल्कुल उन्हीं पर गई थी। हर किसी की मदद के समय तो वह ऐसे पहुंच जाते थे कि जैसे मदद पाने वाले व्यक्ति ने देवता के रूप में दीनानाथ को याद किया है। मदद करते समय उन्होंने कभी यह भी नहीं देखा कि मदद पाने वाला अमीर है या गरीब, शिक्षित है, अथवा अशिक्षित। बस उन्हें तो दूसरे की पीड़ा और परेशानी दूर करने से मतलब होता था।

अक्सर दीनानाथ के घनिष्ठ मित्र रामशंकर दयाल कहते थे, 'भई दीनानाथ जब तुम मरोगे तो, तुम्हें अर्थी देने वाले कंधे इतने होंगे कि उनमें आपस में लड़ाई होगी कि कौन तुम्हें कंधा देगा।' इस पर दीनानाथ बोलते, 'क्यों, तुम्हें जलन हो रही है? भई यह तो अपनी—अपनी किस्मत है।' दीनानाथ के मित्र रामशंकर दयाल के बेटे का ट्रांसफर मुंबई हो गया था, इसलिए वह दिल्ली से मुंबई चले गए थे लेकिन फोन के माध्यम से वार्तालाप होता रहता था।

सुबह होने को आई। आज दिवाली थी। सभी अपने—अपने घरों को सजाने में लगे हुए थे। दो कमरों में गूंजने वाली चीत्कार उन कमरों मे घुट कर रह गई थी। सभी फ्लैटों के दरवाजे बंद थे। पता नहीं उन्होंने इन दो प्राणियों के रोने की चीख सुनी नहीं थी या इस भीड़ भरे शहर में मृतक को अनदेखा करने की इस शहर को आदत पड़ गई थी। रोज ही तो कितनी मौतें होती हैं। यदि व्यक्ति हर किसी की मौत में शरीक होने लग जाएं तो अपने काम कब करें। वह भी त्योहार के दिन, सभी उस फ्लैट की ओर आने से बचना चाह रहे थे।

दीनानाथ की बेटी प्रशंसा बचपन से ही तीक्ष्ण बुद्धि की थी। वह हर कक्षा में न सिर्फ प्रथम आती थी, बल्कि अन्य गतिविधियों में भी आगे रहती थी। गणित में वह बहुत अच्छी थी। वह गणित की प्रोफेसर बनना चाहती थी। अक्सर वह दीनानाथ से कहती, 'पिताजी, देखना जब मैं गणित की प्रोफेसर बनूंगी तो आपकी क्लास भी लिया करूंगी। इस पर दीनानाथ कहते, 'अपनी बेटी का विद्यार्थी बनकर मुझे बहुत खुशी होगी।' इस प्रकार सीमित साधनों में भी दीनानाथ हर हाल में खुश रहते थे। बेटी बिल्कुल उन्हीं पर गई थी। हर किसी की मदद के समय तो वह ऐसे पहुंच जाते थे कि जैसे मदद पाने वाले व्यक्ति ने देवता के रूप में दीनानाथ को याद किया है।

सुबह के सात बजे। अखबार वाला अक्सर इसी समय सबके घरों में अखबार डाला करता था। दोनों मां—बेटी के विलाप को देखकर और सफेद चादर में लिपटे शव को देखकर अखबार वाले ने एक—दो घरों को सूचित किया कि पण्डित दीनानाथ नहीं रहे। अखबार वाले से समाचार पाकर एक दो घरों से लोग मजबूर से वहां तक आए और आपस में बोले, 'अरे, अचानक यह कैसे हो गया। कल तक तो सब ठीक था।' एक मोटी सी महिला निर्मला बोली, 'ओ...हो..... दीनानाथ जी नहीं रहे। बताओ गए भी तो दिवाली के दिन। जिस दिन इस घर में रोशनी होनी थी, उसी रोशनी को बुझा गए। अब इन मां—बेटी को भला कौन सहारा देगा?' तभी वह स्वयं से ही बोली, 'अरे, मेरी बहू तो प्रसव पीड़ा में तड़प रही है। उसे अस्पताल पहुंचा कर आती हूं।' वह सहानुभूति के बजाए उर्मिला और प्रशंसा पर बेचारगी की दृष्टि फेंकते हुए वहां से चली गई। दो—चार पड़ोसी अब तक वहां एकत्रित हो गए थे।

शमशान घाट 'अगम्य विहार' कॉलोनी से काफी दूर था। ऐसे में उन्हें पैदल इतनी दूर तक कैसे और कौन ले जाएगा। एक व्यक्ति बोला, 'क्यों न एंबुलैंस बुलवा ली जाए। वही दीनानाथ जी के शव को शमशान घाट तक पहुंचा आएगी। सभी यही विचार—विमर्श कर रहे थे। दाह संस्कार के लिए लकड़ी और अन्य सामान कौन लेकर आएगा? सभी एक—दूसरे की ओर देख रहे थे। प्रशंसा और उर्मिला दुःख की इस घड़ी में हर व्यक्ति के चेहरे को देख रही थी। हर व्यक्ति एक बोझ सा लादे अंतिम संस्कार के काम को अंजाम दे रहा था। यह देखकर उर्मिला के शोक संतप्त हृदय में शूल सा उठा, वह सिर थाम कर बैठ गई।

अब तक दीनानाथ जी के शव को पड़ोसियों के द्वारा कफन पहनाकर तैयार कर दिया गया था। शव को एंबुलैंस में रखने के लिए लोग उठ ही रहे थे कि सहसा प्रशंसा चीख उठी, 'नहीं, कोई मेरे पिता जी के शरीर को हाथ नहीं

लगाएगा। मेरे पिताजी, जिन्होंने अपने जीवन में न जाने कितने अनगिनत लोगों को जीते जी कंधा दिया, आज उनके शव को कंधा देने के लिए कोई मौजूद नहीं है। मैं अपने पिताजी के शव का संस्कार अनाथों की तरह नहीं होने दूंगी। उनका शव भी कंधे पर जाएगा। हां मैं अपने पिता को कंधा दूंगी। उन्होंने जीवन भर मुझे हर दुख और मुसीबत से लड़ना सिखाया, आज वक्त आ गया है कि मैं पिता की शिक्षा को अपने जीवन में उतारूं।' उसकी बात सुनकर एक वृद्धा बोली, 'अरे बेटी, कैसा अनर्थ कर रही हो। भला, बेटी भी कहीं पिता को कंधा देती है। तेरे पिता सीधा नरक में जाएंगे। नरक नसीब होगा। बेटा ही पिता को कंधा देता है।' इस पर प्रशंसा बोली, 'कौन कहता है कि मैं बेटा नहीं हूं। मेरे पिता के लिए मैं बेटी और बेटा दोनों ही हूं। अब मुझे आप लोगों की अनर्गल बातें नहीं सुननी। जब तक मैं चुप थी तब तक यहां खड़े सभी लोग मुझ पर और मेरी मां पर बेबसी दिखा रहे थे। मेरे पिता ने अपने जीवन की सारी पूंजी लोगों पर लगा दी और आज आप लोगों में से किसी के पास इतनी हिम्मत तक नहीं है कि वह मेरे पिता को कंधा दे सके। आप लोग जाएं यहां से।' जैसे ही वह अरथी की ओर बढ़ी कि सामने से रामशंकर दयाल आते दिखाई दिए। रामशंकर दयाल को देखकर प्रशंसा की रूलाई फूट पड़ी और वह उनके सीने से लगकर रोने लगी। रामशंकर दयाल ने स्वयं को संभाला और प्रशंसा से बोले, 'बेटी, तुम सचमुच हिम्मती हो। मैं तुम्हारी बातों से सहमत हूं। समाज के खोखले दावों से मुझे सख्त एतराज है। अपने दोस्त को मैं कंधा दूंगा।' जैसे ही दोनों अरथी की ओर बढ़े कि एक नौजवान प्रशंसा और रामशंकर के पास आया और बोला, 'आप लोग मुझे नहीं जानते। दीनानाथ जी ने मेरी बहुत मदद की थी। आड़े वक्त में उनकी मदद पाकर ही मैं आज एक सफल डॉक्टर हूं। मेरा नाम पंकुल है। मैं उन्हें कंधा दूंगा।' तीनों दीनानाथ के शव को उठाने के लिए आगे बढ़े कि अचानक उर्मिला नींद से जागी और बोली, 'अपने पति का मैंने हर मोड़ पर साथ दिया तो आज कैसे छोड़ सकती हूं और वह भी उन्हें कंधा देने के लिए उठ खड़ी हुई।

सुबह होने को आई। आज दिवाली थी। सभी अपने–अपने घरों को सजाने में लगे हुए थे। दो कमरों में गूंजने वाली चीत्कार उन कमरों मे घुट कर रह गई थी। सभी फ्लैटों के दरवाजे बंद थे। पता नहीं उन्होंने इन दो प्राणियों के रोने की चीख सुनी नहीं थी या इस भीड़ भरे शहर में मृतक को अनदेखा करने की इस शहर को आदत पड़ गई थी। रोज ही तो कितनी मौतें होती हैं। यदि व्यक्ति हर किसी की मौत में शरीक होने लग जाएं तो अपने काम कब करें। वह भी त्योहार के दिन, सभी उस फ्लैट की ओर आने से बचना चाह रहे थे।

दीनानाथ के शव को उर्मिला, प्रशंसा, रामशंकर दयाल और पंकुल ने कंधा दिया तो सारा जमाना उन्हें देखता रहा। किसी के पास अब कहने के लिए कुछ नहीं बचा था क्योंकि जो करते हैं, वह कहते नहीं बल्कि उर्मिला, प्रशंसा, रामशंकर और पंकुल की तरह अंजाम देते हैं।

आज उर्मिला और प्रशंसा ने अंतिम यात्रा के अर्थ को बदल दिया था। जिन दीनानाथ को अनेक लोगों के कंधे मिलने थे, उन्हें क्या मालूम था कि उनकी पत्नी और बेटी उन्हें कंधा देकर समाज के सामने एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करेंगी जो अंतिम संस्कार के सारे मायनों और अर्थों को बदलकर रख देगा।

आज प्रशंसा ने अपने पिता के संस्कारों और शिक्षा को व्यवहारिक जीवन में अपनाकर दिखा दिया था कि उसके पिता दीनानाथ ने उसके संस्कारों को इतनी मजबूती से गढ़ा है कि तूफान तक उसे हिला नहीं सकते। वहीं दीनानाथ के शव को अपने कंधों पर थामे उर्मिला अपने भावों से बता रही थी कि भारतीय पत्नी हर मोड़ पर अपने पति के साथ होती है। आवश्यकता पड़ने पर वह कोमल से मजबूत भी बन सकती है। रामशंकर दीनानाथ के शव को कंधे पर थामे दुनिया को यह बता रहे थे कि दोस्ती कभी मरती नहीं, अच्छाई कभी दबती नहीं। पंकुल शव को कंधा देते हुए यह बताने का प्रयास कर रहा था कि निस्वार्थ रूप से मदद करने वाले व्यक्ति की अंतिम यात्रा को कंधा देने वालों की कोई कमी नहीं रहती।

वहाँ उपस्थित लोगों की आँखें दीनानाथ की अंतिम यात्रा को देखकर नम हो गयी थीं, सभी दीनानाथ के पार्थिव शरीर के प्रति नतमस्तक थे। ◆

पता : 3, डी.डी.ए. फ्लैट्स, खिड़की गांव,
मालवीय नगर, नई दिल्ली–110017
मो. : 9971125858

हरी साड़ी

❑ राजेन्द्र राजन

'बा बुल मोरा नहियर छूटो ही जाए... चार कहार मिल डोलियां सजाए रे ...'

'ऊंहू ऊंहू... बाबुल मोरा... वो जब भी कोलकत्ता की गलियों में साड़ियां बेचने निकलता, ये गीत सहसा ही उसकी जबान पर तरन्नुम में मीठी सी तान छेड़ देता। वो अपनी ही धुन में कलकत्ता के मौहल्लों की संकरी गलियों में मीलों लज्बा सफर तय करता रहता। यकायक उसे ज़्याल आता कि वो तो साड़ियां बेचने निकला है। इस गीत ने तो उसे दीवाना सा बना छोड़ा है। अपना पेशा ही भूल जाता है।'

'साड़ी ले लो साड़ी... बनारसी साड़ी ले लो। सूती साड़ी ले लो। शिफॉन की साड़ी ले लो... रंग–बिरंगे डिजाइनों की साड़िया ले लो। आया रे आया साड़ी वाला आया... फिर... 'बाबुल मोरा...' कभी–कभी तो ये फर्क करना मुश्किल हो जाता कि वो लोगों का गीतों से मनोरंजन करने निकला है या साड़ियां बेचने। अक्सर लोग उसे रोककर बिन मांगे मश्विरा देने लगते, 'ओ साड़ी वाले बाबू। तू ये साड़ी बेचने का काम छोड़कर महफिल क्यों नहीं सजा लेता। तेरा गला तो खूब सुरीला है। रे सरस्वती का वास है तेरे कंठ में।

बस ये आखिरी वाक्य 'आया रे। साड़ी वाला आया मौहल्ले की औरतों के कानों में गूंजा नहीं कि रोजमर्रा के कामों में मुब्तिला औरतें, लड़कियां यहां तक कि अधेड़, बूढ़ी औरतें भी साड़ी वाले को रोक लेतीं। ''अरे भईया रूको तो सही।'' बस फिर क्या, बीस–बाईस साल का वो गवरू जवान किसी नुक्कड़ या चौबारे पर साड़ियों की बड़ी सी गठरी उतार कर बैठ जाता। उसके इर्द–गिर्द औरतों का झुण्ड जुट जाता।

बहन जी वही खोलना जो पसन्द हो। साड़ी की तहें बार–बार लगाना मुश्किल है। फिर सलवटें पड़ जायें तो कोई औरत उसे देखना पसन्द नहीं करती। खरीदना तो दूर की बात है। ''तू पंजाबी है रे क्या ? बांगला नहीं जानता।'' एक अधेड़ औरत ने उसे टोका।

'तो क्या हुआ। पंजाबी कौम भी तो हिन्दुस्तान में ही रहती है... पेट तो पालना है न। फेरी लगाकर चार पैसे कमा लेता हूं......'

'मेरा नाम तब्बस्सुम है। वो ईद आने वाली है न, त्यौहार के लिये एक साड़ी खरीदनी है।' 'तो ले ना। बता कौन सी पसन्द है ?'

'वो लाल किनारी वाली। किते में देगा रे तू 'दस रूपये।

'अरे पांच की साड़ी दस में बेचता है तू। मेरे पास तो पांच ही हैं।

'पन्द्रह की है। दस में दे रहा हूं। बनारसी सिल्क है। पांच तो इसकी खरीद भी नहीं है। बहन, औरतों से माथापच्ची, बहसबाजी, तुनक मिजाजी में ही वक्त जाया हो जाता है। दिनभर में बमुश्किल दो–तीन साड़ियां बिक पातीं हैं।

बस ये आखिरी वाक्य 'आया रे। साड़ी वाला आया मौहल्ले की औरतों के कानों में गूंजा नहीं कि रोजमर्रा के कामों में मुब्तिला औरतें, लड़कियां यहां तक की अधेड़, बूढ़ी औरतें भी साड़ी वाले को रोक लेतीं। ''अरे भईया रूको तो सही।'' बस फिर क्या, बीस–बाईस साल का वो गवरू जवान किसी नुक्कड़ या चौबारे पर साड़ियों की बड़ी सी गठरी उतार कर बैठ जाता। उसके इर्द–गिर्द औरतों का झुण्ड जुट जाता।

बाबुल मोरा...एक लड़की ने उसे रोका, 'ऐ बाबू दिखा ना साड़ी मुझे भी।' बदरंग कपड़ों में वह कमसिन सी, आंखों से बतियाती लड़की उसके सामने आकर खड़ी हो गयी 'तू रोज–रोज बीच रास्ते में आकर क्यों मेरा रास्ता रोककर खड़ी हो जाती है ? 'बाबू साड़ी लेनी है मुझे।

'छह बार मेरा रास्ता रोक चुकी है। साड़ी–बाड़ी लेनी होती तो अब तक...'तू रख तो सही नीचे अपना बोझा।'

'कुन्दन ने साड़ियों का भारी भरकम गट्ठर थड़े पर रख दिया।'

'वो बीच में हरे वाली हे न। लाल किनारी वाली।' लड़की ने हसरत भरी निगाहों से मनपसन्द साड़ी की ओर उंगली से इशारा किया।

'पैसे हैं खीसे में?'

'बाबू साड़ी निकाल तो सही।'

कुन्दन ने गट्ठर की गांठ खोलकर एहतियात से हरी साड़ी निकाल कर उस लड़की के हाथों में थमा दी।

वो नजमा थी।

साड़ी की दो तीन तहें खोलकर उसने उसे अपने बाएं कंधे पर पल्लू की तरह गिरा लिया। दूसरा सिरा उसके पैरों को छू कर थड़े के पत्थर को स्पर्श कर रहा था। साड़ी देह से क्या सटा कर देखी, उसकी काया खिल उठी।

'यही पसन्द है मुझे। कितने की है। 'दस रूपये।'

'बाबू इस साड़ी पर मेरा दिल आ गया है।' ले ले ना। सोच क्या रही है नजमा रानी। ''ले तो लूं। पर मेरे पास दस रूपये नहीं हैं।' 'तो आज फिर तूने मेरा वक्त बर्बाद किया ?

'बाबू। क्यों नाराज होते हो ? कुछ दिन की ही तो बात है। भाई बाज़्बे गया है। पैसा कमाने। एक महीने में आ जायेगा। तब ले लूंगी। बस इसे किसी और को मत बेचना। संभाल कर रखना मेरे कू।'

पता चला नजमा अनाथ है। बस एक भाई है। वो भी रोजी–रोटी की तलाश में दूर देस बज़्बई में है। झोपड़ी में अकेली रहती है। आस पड़ोस के घरों में साफ–सफाई, मेहनत मजूरी कर पेट पाल रही है किसी तरह। उस पर बीमार।

'तूने हरी साड़ी की रट लगा रखी है। एक महीने से मैं परेशान हूं। इसे और भी कई लड़कियां पसन्द कर चुकी हैं। लेकिन मैंनें उन्हें यह कहकर मना कर दिया कि ये बिक चुकी है। गलती से गट्ठर में आ गयी... कई औरतें तो इसके बीस पच्चीस तक देने को तैयार हैं। तेरी भावनाओं की कद्र करते हुए मैने सबको मना कर दिया।''बाबू बस एक हफते की तो बात है।'

'दादा आने वाला है। खूब पैसे कमा कर आ रहा है। तू दस की बजाय बीस ले लेना... पर ये हरी साड़ी पर मेरा दिल अटका हुआ है। एक बार मैं इसे पहनकर दादा के साथ बाजार जाऊंगी... वो ईद आ रही है ना। त्यौहार का सामान भी तो खरीदना है।'

'ठीक है। अगले जुज्मे तक तूने नहीं खरीदा, तो मैं इसे किसी और को बेच दूंगा।'

बाबू। यकीन कर। दादा पक्का आने वाला है। यह कहते हुए नजमा का चेहरा लाल होने लगा। उसके माथे पर पसीने की बूंदे तिर आयीं।'

'अरे नजमा बेटी। तेरे माथे पर पसीना...। कुछ नहीं बाबू। वो कभी–कभी दिल में सुई सी चुभती है तो माथे पर पसीने की बूंदें जम जाती हैं।'

'अरे। डाक्टर को दिखा ना। दिल के मरीजों को आता है पसीना। तू तो सोलह–सत्रह की है। अभी कहीं हार्ट अटैक?'

'कोई बात नहीं बाबू। दवा दारू के पैसे कहां है मेरे पास... तुम चलो अब ...अब...'

नजमा। लखनऊ के एक नबाव थे। वाजिद अली शाह। गोरों ने उन्हें देस निकाला दे दिया। वो अवध के बादशाह थे। यूं कहने को नवाब थे। ये बात 1856 की है। गोरों ने उनका राजपाठ छीन लिया। कलकत्ता भेज दिया। पेन्शन पर। शायर थे। उन्हें लगा कि जैसे वो अपना मायका छोड़कर ससुराल जा रहे हैं। खुद ही ये गीत लिखा जो सत्तर साल से घर–घर में गाया जा रहा है। बस नबाव साहब को बतानी हुकूमत का ये फरमान नागवार गुजरा। वो नवाब बेहद निराश, उदास, गमगीन होकर जब लखनऊ छोड़ने लगे तो खुद का ही रचा हुआ गीत गाने लगे। अपनी पीड़ा को कम करने के वास्ते। 'बाबुल मोरा नहिअर छूटो ही जाए।'

कुन्दन चिन्ता में डूब गया। उसे नजमा को किसी अच्छे, अनुभवी डाक्टर को दिखाना चाहिए। अगर वो उसकी बहन होती तो... उसे नजमा की कहानी अपनी ही कहानी प्रतीत हुई। क्या सोचकर उसने जालन्धर में अपना घर बार छोड़ा था। सैकड़ों मील दूर कलकत्ता में रैमिग्टन टाइपराइटर कपनी में सेलसमैन की नौकरी के वास्ते। अपने दो छोटे बच्चों, बीबी की परवरिश की खातिर हर महीने बीस रूपये का मनीआर्डर भेजता है। बतौर सेलसमैन उसकी तन्खाह महज दस रूपये है। छुट्टी के दिन या शाम के वक्त फेरी लगाकर वो साड़िया बेचता है। कुल चालीस या पचास रूपये कमा पाता है। महीने भर में। अगर वो भावुक होकर नजमा को किसी डाक्टर के पास ले भी जाएं तो डाक्टर दस रूपये से कम नहीं मांगेगा। कलकत्ते के सरकारी अस्पताल तो मुर्दाघरों में तब्दील हो चुके है। घंटों लबी कतार में लगे रहने के बाद भी कोई डाक्टर पूछता तक नहीं है। कुन्दन नजमा के लिये फिक्रमंद तो जरूर था, लेकिन लाचारी, बेबसी के जाल ने भी उसे बुरी तरह जकड़ रखा था।

कभी–कभी उसे लगता कम्पनी में सेलसमैनी, साड़ियों का धन्धा छोड़–छाड़कर अपणे शहर लौट जाए पंजाब। वहीं कोई मेहनत मजूरी कर बच्चों का पेट पाल लेगा। उसकी सूरते–हाल ने उसकी जिंदगी को दोजख बना कर छोड़ा है। कभी–कभी उसे लगता ननमा और उसकी जिन्दगी में क्या फर्क है? फिर नजमा जैसे कितनी ही बेशुमार लड़कियों का बचपन और जवानी दो जून रोटी की आस में मजदूरी में ही बर्बाद हो जाते हैं। बार–बार नजमा का सुन्दर, सलोना, मासूम चेहरा कुन्दन का पीछा करने लगता है।

'बाबू तुम बार–बार ये गीत क्यों गुनगुनाते रहते हो' बाबुल मोरा नहिअर छूटो ही जाए... 'ये गीत तो लड़कियां गाती हैं। पीहर का घर छोड़ते वक्त।'

नजमा। लखनऊ के एक नबाव थे। वाजिद अली शाह। गोरों ने उन्हें देस निकाला दे दिया। वो अवध के बादशाह थे। यूं कहने को नवाब थे। ये बात 1856 की है। गोरों ने उनका राजपाठ छीन लिया। कलकत्ता भेज दिया। पेन्शन पर। शायर थे। उन्हें लगा कि जैसे वो अपना मायका छोड़कर ससुराल जा रहे हैं। खुद ही ये गीत लिखा जो सत्तर साल से घर–घर में गाया जा रहा है। बस नबाव साहब को बतानी हुकूमत का ये फरमान नागवार गुजरा। वो नवाब बेहद निराश, उदास, गमगीन होकर जब लखनऊ छोड़ने लगे तो खुद का ही रचा हुआ गीत गाने लगे। अपनी पीड़ा को कम करने के वास्ते। 'बाबुल मोरा नहिअर छूटो ही जाए।'

मगर वो नवाब का नहुअर थोड़े ही था। वो तो उसकी सलतनत थी न बाबू ?'

'नवाब के लिये तो नहिअर ही था न। वाजिद अली शाह ने भी वहीं पीड़ा भोगी जो लड़की बाबुल का घर छोड़ ससुराल जाते वक्त महसूस करती है।'

जाऊं?

'बाबू तुम भी तो नवाब ही हो... गीतों के नवाब, साड़ियों के नवाब'

'हां नबाव ही तो हूं। शायद एक रोज नबाव की हैसियत को भी बनाकर कोई बादशाह बन जाऊँ। बाबू तुम कैसे–कैसे झूठे जवाब देखते रहते हो। सपने वो देखने चाहिए जो सच हो सकें...उठा।

नजमा ने कुन्दन की दुःखती रग पर उंगली रख दी थी। वो कहीं भीतर ही भीतर तिलमिला 'तू ठीक कहती है नजमा। मेरे दोस्त–यारों का मश्विरा है मुझे सिंगर बनना चाहिए। वो मेरी आवाज को खुदा की नेमत मानते हैं। ग्रामोफोन कपनियों में अपने गीत रिकार्ड करने चाहिएं मुझे। ''अरे वाह। ठीक फरमाते हैं बाबू तुज्हारे दोस्त। कोशिश करो न। कलकत्ता में तो सुणा है गानों के काले तवे बनते हैं। सब उन्हें रिकार्ड बोलते हैं।'

'बस एक बार कपनी वालों को मेरी आवाज पसन्द आ जाए तो साड़ी की इस गठरी को में हुगली में बहा दूंगा।'

नजमा खिलखिला कर हंस पड़ी। उसके मोतियों से सफेद दान्त चमक उठे। शायद उस रोज कुन्दन ने नजमा को पहली बार निश्छल हंसी में डूबे देखा था। रूह से निकली खुशियां के तब्बसुम उसके चेहरे पर मोतियों से झिलमिला उठे थे।

कुन्दन का वहम यकीन में बदलने लगा था। उसे ग्रामोफोन कज्पनी के दफतर में जल्द ही दस्तक देनी होगी।

'नजमा। तू खुद को मैं अनपढ़, गंवार कहती है। दुनियादारी से दूर हूं। पर तू तो बड़ी इंटैलैक्चुअल है। रे!

'ये क्या बोला तू बाबू ?'

'बुद्धिजीवी'

'ये भी समझ नहीं आया।'

'ऊंची सोच वाली'

'क्यों फैंकता है बाबू। खाली पीली।'

'सुनो। अगर मैं सिंगर बन गया। फिल्मों में गाने लगा तो मैं तेरे कू झौंपड़पट्टी से निकाल कर फिल्मी दुनिया में कोई अच्छा सा काम दिला दूंगा।'

हैं।

'फोकट में काहे को झूठ बोलता है तू। जब लोगों के दिन फिरते हैं वो दिल भी फेर लेते 'बाबू तू बड़ा आदमी बन गया न तो क्यों रूख करेगा मेरी झोंपडी का। मैं तेरी क्या लगती हूं। बस हरी साड़ी पर ही तो टिका है मेरा दिल। जब मैं उसे खरीद लूंगी तब तू इस बस्ती को भी भूल जाएगा। फिर कहां नजमा और कहां कुन्दन बाबू ?'

नजमा। तू मेरी छोटी बहन जैसी है। पंजाबी जान दे देते हैं, कौल ते करार नूं जिन्दा रखण वास्ते।'

'बाबू तेरी बोली मुझे समझ नहीं आती।'

'आयेगी कैसे ? झोपड़ियों के माहौल से बाहर निकलेगी तब ना।' तू कहे तो हरी वाली साड़ी रख ले। जब तेरा दादा आएगा, चुका देना कीमत।'

'ना बाबा ना। हम लोग गरीब जरूर है। मगर बेईमान नहीं। अगर पैसे न दे पायी तो... ' 'ठीक है। राजा हरीशचन्द्र की औलाद। चलता हूं अब। आज फिर तू मेरा भेजा चाट गयी।'

कुन्दन ने साड़ियों की गठरी पुनः बांधी। उसे सिर पर रखा। उसे लगा लौटने से पहले एक बार नजमा को जी भर कर देख ले। निलिप्त, निर्दोष, मोम की गुड़िया। हर पल पिघलने को आतुर। उसकी आंखों में न मालूम कितने ही बेशुमार ज्वाब टिमटिमा रहे हैं। कुन्दन ने देखा नजमा वहीं। टूटी–फूटी बाण की चारपाई पर बैठी है। चुपचाप, गुमसुम सी। बाबू को लौटते हुए देखने के लिये शायद। कुन्दन आंखों से ओझल हो जाए तो दिन भर के रोज काम निबटाने के लिये उठे। कुन्दन और नजमा इस बात से कतई बेखबर थे कि आखिर वो कौन सी तार, धागा या डोर है जो दोनों को भावनाओं के धरातल पर जोड़े हुए है। कोई रिश्ता नहीं, फिर भी एक दूसरे के लिये फिक्रमन्द।

कुन्दन को लगा शायद नजमा ठीक ही कह रही थी। उसे ग्रामोफोन कपनी में ऑडीशन देना चाहिए। अल्लाह के फजल से मुमकिन है कज्पनी को उसकी आवाज पसन्द आ जाये। फिर कोशिश करने में क्या हर्ज है ? हिज्मते मरदां मददे खुदा। एक दिन कुन्दन सुबह सवेरे हिन्दुस्तान ग्रामोफोन कज्पनी के दफतर पहुंच गया। गेट पर तैनात नेपाली चौकीदार ने पूछा, 'कौन हो तुम? किससे मिलना है ?'

'ऑडीशन के लिये आया हूं। सिंगर हूं।'

'सुबह से शाम तक सौ लोग चक्कर लगाते हैं यहां सिंगर बनने के लिये। जब तक बड़े साहब का हुक्म नहीं होगा, हम तुमको अन्दर नहीं जाने दे सकता।'

कुन्दन तैश में आ गया। 'उनसे कहो जालन्धर से मेहर महाशय ने भेजा है।'

'तुम जाओ यहां से।'

कुन्दन ने आव देखा न ताव। चौकीदार को धक्का देकर फुर्ती से जबरन भीतर घुस गया।

दो घंटे बाद दफतर से बाहर निकला तो उसके हाथ में अनुबन्ध पत्र था। रिहर्सल के बाद एक महीने के अन्दर उसके दो गाने रिकार्ड होंगे।

चौकीदार ने कुन्दन को सलाम किया । अदब से बोला, 'फिर तशरीफ लाइएगा हुजूर।'

कुन्दन को अल्लादीन का चिराग हाथ लग चुका था। जिसे घिसते ही कामयाबी का मिन्न उसके कदम चूमने लगेगा। उसे पूरा यकीन था कि आने वाले वक्त में वो हिन्दुस्तान का हर दिल अजीज गुलूकार बनेगा। बस एक बार ग्रामोफोन कज्पनी ने उसके गानों का रिकार्ड रिलीज किया नहीं कि फिल्म वाले कलकत्ता में उसके घर की तलाश में कतारबद्ध होने लगेंगे। वो खुशफहमी का शिकार था या फिर दृढ़ आत्मविश्वास का असर, उसे खुद पता नहीं था।

कुन्दन को अल्लादीन का चिराग हाथ लग चुका था। जिसे घिसते ही कामयाबी का मिन्न उसके कदम चूमने लगेगा। उसे पूरा यकीन था कि आने वाले वक्त में वो हिन्दुस्तान का हर दिल अजीज गुलूकार बनेगा। बस एक बार ग्रामोफोन कज्पनी ने उसके गानों का रिकार्ड रिलीज किया नहीं कि फिल्म वाले कलकत्ता में उसके घर की तलाश में कतारबद्ध होने लगेंगे। वो खुशफहमी का शिकार था या फिर दृढ़ आत्मविश्वास का असर, उसे खुद पता नहीं था।

कुन्दन को उसके दोस्तों ने सलाह दी कि अब वो अपनी बची खुची साड़ियों के गट्ठर को या तो गरीबों में बांट दे या फिर उसे हुगली में बहा डाले। ना रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। अगर वह ग्रामोफोन कज्पनी से गीत रिकार्ड करने का अनुबन्ध पत्र प्राप्त करने के बाद भी साड़ियां बेचता रहेगा तो कज्पनी उसका इकरारनामा रद्द कर सकती है। आवाज के साथ छवि का साफ सुथरा होना भी लाजमी है। उसके फेरी वाले होने की खबर कज्पनी के कानों में कभी भी कोई भी दुश्मन पहुंचा सकता है।

लेकिन कुन्दन पसोपेश में था। नजमा से मिलना जरूरी था। वायदे के मुताबिक उसे हरी साड़ी देना लाजमी था।

'तू क्यों कूड़ा कबाड़ बीनकर अपना पेट पालने वाली छोरी के लिये पागल हुए जा रहा है। उसके दोस्त मेहर ने उसे लताड़ा।

'नहीं मेहर। मैनू अपणा कौल निभाण दे।' अगर मैं उसे हरी साड़ी देने नहीं गया तो ताउम्र मेरे दिल में खलिश रहेगी।

'बस इत्थे ही मार खा गया हिन्दुस्तान। यार कुन्दन तू क्यों उस दो टके की लड़की के लिये सैन्टी हो रहा है?'

'शटऊप। गरीब आदमी की भी इज्जत होती है। उसके बारे में ऐसे घटिया अलफाज के इस्तेमाल का मैं कतई कायल नहीं हूं।'

'ओह। तो हुजूर का दिल आ गया है। झोपड़े वाली पर... तभी मैं कहूं बार–बार उसके यहां जाकर 'बाबुल मोरा नहिअर छूटो जाए क्यों गुनगुनाता था तू।'

'शर्म कर यार। मैं उसे अपनी छोटी बहिन मानता हूं। धर्म बहन। तुझे बेहूदा मजाक सूझ रहा है, ''मैं जा रहा हूं उसे हरी साड़ी गिफट करने।

'कुन्दन। मुआफ करना दोस्त। मैंने तेरा दिल दुःखाया। मेहर ने उसे बाहों में भर लिया।' 'यार वेली तू सचमुच हीरा है... मैं भी चलां तेरे नाल ?'

'तू क्यों जाएगा दुर्गन्ध भरी बस्ती में ? तू तो नवाब है न... नाक– मों सिकोड़ेगा वहां जाकर श्यार कुन्दन। बस कर। चलता हूं। मैं भी मिलणा चाहुंदा हां नजमा नू।'

इस बार कुन्दन के हाथों में साड़ियों का गट्ठर नहीं था। नाहीं वो वाजिद अली शाह का दर्दभरा गीत गुनगुना रहा था। 'बाबुल मोरा नाईअर छूटो ही जाये...' वो अपने दोस्त मेहर के साथ उस झोपड़पट्टी में पहुंच रहा था जहां बैठकर वो प्यार, दुलार, आत्मीयता से नजमा से मीठी–मीठी बातें करता था। उन लमहों में उसे लगता था कलकत्ता जैसे बेदर्द, बेमुरब्बत, खुदगर्ज लोगों के शहर में अगर कोई उसकी सच्ची दोस्त है तो केवल नजमा। चन्द हफ्तों में ही मासूमियत, भोलेपन से लबरेज उस लड़की में उसने अपनी छोटी बहन का प्रतिबिब देखा था। काश वह उसे गले लगा पाता और उससे कह पाता 'नजमा मैं तुझे

कलकत्ता के सबसे मशहूर किसी बड़े डाक्टर के पास ले चलूंगा ? तेरा चेकअप कराऊंगा। बेहतर दवादारू का प्रबन्ध करूंगा... बस इस बार वह सब सोचकर आया था जो वह नजमा के लिये दिल से करने के लिये बेताव था। खुद को गिरवी रख कर भी नजमा का इलाज करा कर रहेगा।

उसके हाथ में शानदार लिफाफा था। लकदक करता हुआ। उसके भीतर उसने खूब करीने से तहकर वही हरी साड़ी रखी हुई थी जिसके बारे में कई बार नजमा उससे कह चुकी थी, 'बाबू। हरी साड़ी पर मेरा दिल आ गया है। इसे संभाल कर रखना । जुमे के रोज मेरा भाई आ रहा है बाबे से...'' तब मैं इसे पैसे देकर खरीद लूंगी।

जब कुन्दन और उसका दोस्त राजा बाजार की उस झोपड़पट्टी इलाके में पहुंचे तो आम दिनों की तरह वहां चहल पहल गायब थी। उसे याद आया नजमा की झोपड़ी के बाहर जामुन का पेड़ है। अक्सर उसके नीचे बैठकर वो अपना मजमा लगाता था। जब वहीं दूर–दूर तक साड़ियों की खुशबू बिखरने लगती तो आसपास से लोगों का सैलाब सा उमड़ आता था जामुन के दरत के नीचे। आज उसकी छांव में पन्द्रह–बीस लोग बैठे थे। गुमसुम से।

कुन्दन ने नजमा की झोंपड़ी के करीब पहुंचकर उसे आवाज दी। नजमा। ओ नजमा बहन।

कहां है तू। देख तेरी हरी साड़ी लाया हूं।

कुन्दन को लगा नजमा तुरन्त अपनी झौंपड़ी से निकलकर आएगी। उसके हाथों में हरी साड़ी देखकर खुशी के मारे झूम उठेगी। उस बाबू से लिपट कर कहेगी, 'बाबू तुम आ गये। आखिर ले ही आए न मेरी मनपसन्द हरी साड़ी। रूको अभी दस रूपये लेकर आती हूं ? दादा से...

झोंपड़ी से बाहर एक युवक निकला। 'कहिए मैं नजमा का भाई हूं।' वो सिसक रहा था।

'हम लोग नजमा को मिलने आए हैं।'

नजमा का भाई दहाड़–दहाड़ कर रोने लगा। 'कल शाम नजमा के दिल में दर्द उठा तो चीखने चिल्लाने लगी। कल सुबह की रेल से ही में बाज्बे से पहुंचा था। डाक्टर को बुलाया। नजमा की आखिरी सांसे चल रही थीं। डाक्टर उसे बचा नहीं पाया। दस रूपये भी ले गया फीस के।'

'दस रूपये।'

'हां, वो मैंने उसकी साड़ी के लिये बचाकर रखे थे। बार–बार मुझे खत लिखती थी, 'दादा तुम जल्दी आ जाओ। बबई से। मुझे बाबू से हरी साड़ी खरीदनी है...

कुन्दन का रोना फूट गया। उसने गले से लगा कर नजमा के भाई को बाहों में मींच लिया। आंसूओं से दोनों के कुर्ते भीग गये।

'मेरे भाई। मैं ही हूं वो बाबू। फेरी वाला। साड़ी वाला।'

'बाबू मेरा नाम इरशाद है। नजमा मुझे अकेले छोड़कर चली गयी। मां–बाप का साया तो पहले ही उठ गया था। अकेला रह गया हूं मैं।'

'तू फिक्र न कर इरशाद। मैं हूं न तेरा भाई।'

क्या करूं। मैं तो लुट गया। नजमा के कफन के लिये एक भी पैसा नहीं है मेरे पास। अब उसकी मईय्यत भला कैसे उठेगी ?'

कुन्दन इरशाद के साथ उस स्याह, घने जालों से दर–बदर झोंपड़ी में दाखिल हुआ। इरशाद ने खिड़की से परदा हटाया तो भीतर रोशनी शहतीर की तरह बाण की उस टूटी–फूटी चारपाई पर बिछ गयी जहां नजमा की देह निश्चेष्ट, निर्विकार, शान्त थी।

कुन्दन नजमा की मृत देह से लिपट कर रोने लगा। 'हे ईश्वर ये तूने क्या कर डाला। मेरी नजमा बहन। उठ। देख। तेरी हरी साड़ी लाया हूं। एक महीने तक इसे संभाल कर रखा था... मैने तो साड़ी बेचने का धन्धा छोड़ दिया। तेरे लिए तोहफे के तौर पर संभाले रखा था मैंने इसे ... याद है तूने ही तो मुझे कहा था ''बाबू तू एक दिन बड़ा सिंगर बनेगा। तेरी जिद ने मुझे गुलूकार बनने का मौका दिया... काश तू मेरे पहले रिकार्ड के गीत सुन पाती...'

'कुन्दन ने लिफाफे से साड़ी को निकालकर खोला और उसे फैलाकर नजमा की मृत देह पर। ओढ़ा दिया...'

इरशाद एकटक, जड़वत सा बाबू को देखता रहा। (टाकीज फिल्मों के महान गायक के. एल. सहगल के जीवन में साल 1930 के आसपास घटित एक वास्तविक प्रसंग से प्रेरित) ◆

पता : गांव बल्ह डा. मौहीं, तहसील

व जिला हमीरपुर

मो. : 8219158269, 9418020610

एक प्रेमकथा

❑ डॉ. प्रीति कबीर

प्रेम ग्रन्थ आज से लगभग 100 वर्षों पूर्व, धानी खेड़ा गांव के पास एक राज घराने की कथा है। इस कथा में एक राजा रत्नसेन और गोदन हारिन (बदनीन) की उदात्त प्रेम कथा को कई सांस्कृतिक उपक्रमों और रजवाड़े के रीति रिवाज, जिन्हें हम सामाजिक उपादानों के द्वारा सम्पन्न करते हैं, का वर्णन है।

आज की नई पीढ़ी जहां पाश्चात्य संस्कृति में आकंठ डूबती जा रही है, वहीं यह प्रेम ग्रन्थ, भारतीय संस्कृति और संस्कारों से अवगत भी करवाएगी।

आज जहां प्रेमी नई परिभाषा नई पीढ़ी अपना रही है। जहां प्रेम, स्वार्थ, धन और वासना के चंगुल में फंस कर अपने विद्रूप रूप में विकसित होता जा रहा है। वहीं आज की पीढ़ी प्रेम के इस मूल्यवान शब्द को देख कर यह समझेगी कि प्रेम एक पवित्र, भाव है जो दैहिक से अधिक मन के पटल पर अपना अद्भुत प्रभाव रखता है।

इस फिल्म में भारतीय सामाजिक परिवेश और संतान के कई सांस्कृतिक उत्सवों को समाहित करके नई पीढ़ी को जानकारी और उससे प्रेरणा मिलने का भी सफल प्रयास करेगी।

इन्हीं कारणों से प्रेम ग्रन्थ जहां नई पीढ़ी को प्रेम का वास्तविक अर्थ वता पाएगी, वहीं भारतीय संस्कृति से भी रूबरू करवा सकती है। इसीलिए ''प्रेम ग्रन्थ'' एक सफल प्रेम कथा और दर्शकों के ह्रदय में अपना अलग स्थान बना सकेंगी ऐसे सोचा जा सकता है। दर्शक सिनेमा हाल से निकल कर मन में कुछ अच्छा महसूस करेगें, ऐसा विश्वास किया जा सकता है।

एक फिल्म कार, शूटिंग लोकेशन ढूंढते हए धानी खेड़ा गांव (उत्तर प्रदेश) के पास के इस निर्जन स्थान पर पहुंच जाता है जहां के पुरोहित रमाशंकर पाण्डेय उसे उस राजमहल के पास ले जाते हैं। यह छोटा–सा गांव जहां थोड़ी सी 50 घरों की आबादी

थी पुरोहित फिल्मकार को एक टूटी सी कोठरी और सदन के भीतर तक ले जाता है।

यही कोठरी है जहां राना नाम की गोदनहरिन (बदनीन) रहा करती थी । इसी राजमहल में राजा रत्नसेन की राजधानी थी। कोठरी के सामने सदन के अन्दर गांव के मुखियां ने इस प्रेम करने वाली गोदनहरिन की मूर्ति बनवाई है। आज की संध्या ढलते ही घोड़ों की टाप और एक चरमराहट के साथ कोठरी के कपाट खुलने की ध्वनि सुनाई पड़ती है अनेक प्रेमी युगल यहाँ आकर अपने प्रेम के लिए आशीर्वाद लेने आते हैं। फिल्म कार ने विस्मय से पूछा क्या आप मुझे इस अद्भुत प्रेम कथा के बारे में कुछ बता सकते हैं।

जी जरूर! आइए इसी मंदिर के चबूतरे पर बैठते हैं।

मेरी जानकारी के अनुसार रत्नसेन राजा अत्यन्त बलशाली संवेदनशील राजा थे। उनके राजमहल में विराट वैभव के साथ दीवारों और कपाटों पर सुन्दर चित्रकारी थी। हीरे–पन्नों से जड़ी उनके राजमहल की चर्चा आसपास के रजवाड़ों में भी खूब थी।

आज जहां प्रेमी नई परिभाषा नई पीढ़ी अपना रही है। जहां प्रेम, स्वार्थ, धन और वासना के चंगुल में फंस कर अपने विद्रूप रूप में विकसित होता जा रहा है। वहीं आज की पीढ़ी प्रेम के इस मूल्यवान शब्द को देख कर यह समझेगी कि प्रेम एक पवित्र, भाव है जो दैहिक से अधिक मन के पटल पर अपना अद्भुत प्रभाव रखता है।

दुर्भाग्यवश राजा की कोई संतान नहीं थी। जिस कारण रानी भी अत्यन्त दुःखी रहती थी।

राजा रत्नसेन ने अपने महामंत्री गुलाम बेग को बुलाकर अपने मन की बात कही।

गुलाम बेग ने अदब भुला कर कहा–महाराज आप तनिक भी चिन्ता न करें। ऊपरवाला जरूर ही आपको पिता बनने का सुख नसीब करवाएगा।

उस रात राजा को देर रात नींद नहीं आई अनेक बुरे विचार उनका पीछा ही नहीं छोड़ते, किन्तु रात्रि के पिछले प्रहर वह सो गये। निद्रा में स्वप्न में उन्हें किसी आकाशवाणी ने कहा ''महाराजा रत्नसेन आपके राज्य में अन्य राज्यों की अपेक्षा कम निर्धनता है, किन्तु प्रजा पूर्ण रूप से संतुष्ट और सुखी हो इसके वास्ते आप स्वयं जाएं और जाने आपको अवश्य आपका उत्तराधिकारी भी प्राप्त होगा।''

महाराजा रत्नसेन की आँख खुली तो एक अद्भुत ऊर्जा का संचार जैसा महसूस हुआ।

उन्होंने अपने महामंत्री को बुलाकर, इच्छा व्यक्त कर दी। महामंत्री जी ने राजाज्ञा पालन करते हुए घुड़सवारों के साथ स्वयं भी राजा के साथ राज्य के मुआइने हेतु चल पड़े।

राजा रत्नसेन स्वयं हर व्यक्ति से मिलते, उनके सुख–दुःख जानने की चेष्टा करते। इस तरह संध्या हो चली।

राजा अपने सहयोगियों के साथ राजमहल की तरफ चल पड़े। दूसरे दिन महामंत्री से कहा पूरे गाँव की प्रजा को हमारे बगीचे में आने के लिए न्योता दे दो। उनके लिए लज़ीज भोजन, मिष्ठान और कपड़ों और मुद्रा का इन्तज़ाम भी करो।

महामंत्री ने ऐसा किया। प्रजा राजा के इस व्यवहार से अत्यन्त प्रसन्न होती गई। सबने उन्हें आर्शीवाद भी दिया।

राजा ने कहा ''आप हमारी प्रजा हैं, हमारी ताकत हैं, आपको कष्ट हो, तो हम सुखी कैसे रहेंगे? जब कभी भी आपको कोई कष्ट हो तो ज़रूरत हो तो बिना हिचक दरबार में आइए।

मुझे या महामंत्री को बताइए। हम उसके निवारण का पूरा इन्तज़ाम कर देंगे।

अगले माह पूर्णमासी के दिन रानी चन्द्रकला ने राजा से अपने गर्भवती होने की बात बताई।

राजा प्रसन्न हुए। उन्हें स्वप्न में आकाशवाणी का स्मरण हो आया।

राजा ने रानी चन्द्रकला को वक्ष से लगाते हुए, कहा ''प्रिए अब हमारी माता–पिता बनने की इच्छा पूर्ण होएगी।

राजा रत्नसेन ने रानी चन्द्रकला की विशेष सेविका को बुला कर सभी बातें समझा दीं रानी के स्वास्थ्य, खानपान, निद्रा, आराम, स्नान ओद में कोई कभी न बरती जाए।

सेविका इन्द्रा ने झुक कर प्रणाम किया। "ऐसा ही होगा महाराज"।

अब राजा रत्नसेन अपना ज्यादा समय रानी के साथ ही व्यतीत करते, उन्हें प्रसन्न रखने की कोशिश करतें दिन व्यतीत होते रहे, ठीक समय पर रानी ने जुड़वा बच्चों को जन्म दिया, दोनों ही सुपुत्र राजा और रानी की प्रतिच्छाया गौर वर्ण, तीखे नाक नक्श वाले थे।

पुत्रों के जन्म का मंगल समाचार, सुन राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी प्रजा को अनेक उपहारों से नवाजा।

महाराजा रत्नसेन ने महामंत्री को बुलवाकर युवराजों के जन्मोत्सव की भव्य तैयारी करने को कहा। आसपास रजवाड़े के सभी राजाओं को भी न्योता दिया गया।

राजसी भोज, मदिरा ओर नृत्य गायन के कार्यक्रम भी आयोजित किए गये।

राज्य पुरोहित यशपाल ने पूजा, अर्चना और प्रार्थना के साथ मंत्रोच्चार कर राजकुवारों के जन्मोत्सव को शुभारंभ किया।

आज राजमहल में खुशियां छा गई थीं। सेवक—सेविकाएं प्रसन्न थे उनके भावी पालनहार आ चुके हैं।

समय का कुरंग भागता रहा। राजकुँवर अब पाँव—पाँव चलने लगे थे उनकी बाल सुलभ क्रीड़ाए जहां राजा रानी का मन मोहती वही दरबार के सभी लोगों के लिए प्रसन्नता उत्पन्न करतीं।

महारानी उन्हें कभी—कभी जुड़वा होने के कारण पहचानने में गलती कर देती। अब उन्हें लगा कि एक समारोह द्वारा राजकुवाँरों का नामकरण संस्कार करके उन्हें उनके नाम से ही पुकारा जाए।

राजपुरोहित से नामकरण संस्कार का आयोजन करने का प्रस्ताव रखा गया।

एक भव्य आयोजन में नामकरण का आयोजन होने की सभी तैयारियाँ हो चुकी थीं। तभी महाराज रत्नसेन ने रानी से कहा, दोनों ही राजकुमारों को आसानी से पहचानने हेतु एक उपाय है, हमारे पास।"

इन्हीं कारणों से प्रेम ग्रन्थ जहां नई पीढ़ी को प्रेम का वास्तविक अर्थ वता पाएगी, वहीं भारतीय संस्कृति से भी रू—बरू करवा सकती है। इसीलिए ''प्रेम ग्रन्थ'' एक सफल प्रेम कथा और दर्शकों के हृदय में अपना अलग स्थान बना सकेंगी ऐसे सोचा जा सकता है। दर्शक सिनेमा हाल से निकल कर मन में कुछ अच्छा महसूस करेगें, ऐसा विश्वास किया जा सकता है।

"वह क्या महाराज"?

वह यह कि राजकुमारों की बाहों पर गोदने द्वारा शीघ्र पहचान हेतु उन्हें किसी गोदनहारी की सलाह और मदद से यह प्रक्रिया संपन्न करनी चाहिए।

राज्य के महांमत्री ने इस विचार हेतु एक गोदनहारिन की बेटी रत्ना का नाम सुझाया। महाराज ने यह आज्ञा दी कि गोदनहारिन रत्ना को पूरे मान सम्मान के साथ उनके आवश्यक उपकरणों के साथ राजमहल में लाया जाए। ऐसा ही हुआ। रत्ना को लेने हेतु कुछ मंत्रीगण लश्कर और पालकी के साथ रत्ना के द्वार पहुँचें।

इस तरह घुड़सवारों को अपने घर की कोठरी के समीप आते देख रत्ना घबराई। उसने कोठरी का दरवाजा बन्द कर लिया। किन्तु राजा के मंत्री निराश नहीं हुए। उन्होंने समझाया बेटी, आपको महाराजा ने उचित प्रयोजन हेतु राजमहल में आमंत्रित किया है। आश्वस्त होने पर रत्ना ने कपाट खोले। उसने मंत्रीगण की बात सुन—समझकर प्रसन्नता से भर उठी ''मैं अतिशीघ्र सभी सामानों सहित राजमहल चलने हेतु आती हूँ। कृपया मुझे थोड़ा—सा समय प्रदान कर दें।''

बिना समय नष्ट किये रत्ना अपने सभी उपादानों को लेकर बाहर आई। उसके लिए पालकी में बैठकर राजमहल में प्रवेश करना एक स्वप्न से कम न था। कुछ उत्सुकता के साथ एक अजीब कौतूहल भी था।

रत्ना स्वयं को अत्यंत भाग्यशाली मान रही थी। राजमहल आ चुका था। उसके पालकी से उतरने पर कई राज सेविकाएँ उसे मार्ग प्रशस्त करते हुए राजमहल के भीतर ले गईं। रानी महल के बाहरी कक्ष तक आने पर उसे वहीं रोका गया। स्वयं रानी ने उसका स्वागत किया। महारानी इस अत्यन्त सुन्दरी स्त्री को देखकर अचंभित रह गईं। उसे निहारते हुए कहा। आओ रत्ना राजमहल में तुम्हारा स्वागत है। रत्ना ने प्रणाम करते हुए रानी को आश्वस्त किया।

महारानी यह गुण हमने अपनी माता से सीखा है। आप निश्चिन्त होकर मुझे राजकुमारों के गोदन प्रक्रिया के लिए आदेश दे दें। महारानी ने मुस्करा कर रत्ना से कहा ''तुम इन वस्त्रों में भी बहुत सुन्दर लगती हो, किन्तु आज राजमहल में राजकुमारों का नामकरण संस्कार का विशेष पर्व भी है। उन्होंने सेविका से कहा इन्हें ले जाओ तैयार करवाकर लाओ।

रत्ना गुलाबी लहंगे और कंचुकि के साथ रूपहली ओढ़नी में अद्भुत सौन्दर्य की देवी—सी लग रही थी। रानी ने उसे निहारा और अपना कार्य शुभारम्भ करने की आज्ञा हेतु राजा को आमंत्रण भेजा। राजा रत्नसेन एकपल को रत्ना के रूप को टकटकी लगाकर अनवरत देखते ही रहे। दूसरे ही उन्हें सत्य का एहसास हुआ वह बोले ''आज तुम्हारे गुण की परीक्षा होगी''। उसमें खरे उतरने पर तुम्हें उपहारों से सज्जित किया जायेगा। तुम अपना कार्य प्रारंभ करो।

रत्ना ने महाराज को प्रणाम करते हुए कहा, आप हमारे पालक हैं महाराज मैं आपको ह्रदय से आश्वस्त करती हूँ कि हमारे राजकुमार हमारे भावी पालक भी हैं। हमें वो अपने से भी अधिक प्रिय हैं। आप निश्चिन्त रहें। सब सुखद होगा। ''महाराज ने मुस्कुरा कर रत्ना से कहा'' तुम रूपवती तो हो ही तुम्हारी बौद्धिक वाक्पटुता भी श्रेष्ठ है। रत्ना ने दोनों ही राजकुमारों के शिवम्, शुभम्, नाम बायें कन्धे पर अंकित कर दिये।

यही कोठरी है जहां राना नाम की गोदनहरिन (बदनीन) रहा करती थी। इसी राजमहल में राजा रत्नसेन की राजधानी थी। कोठरी के सामने सदन के अन्दर गांव के मुखियां ने इस प्रेम करने वाली गोदनहरिन की मूर्ति बनवाई है। आज की संध्या ढलते ही घोड़ों की टाप और एक चरमराहट के साथ कोठरी के कपाट खुलने की ध्वनि सुनाई पड़ती है, अनेक प्रेमी युगल यहाँ आकर अपने प्रेम के लिए आशीर्वाद लेने आते हैं। फिल्म कार ने विस्मय से पूछा क्या आप मुझे इस अद्भुत प्रेम कथा के बारे में कुछ बता सकते हैं।

उधर नामकरण संस्कार के सभी सांस्कृतिक प्रयोजन संपूर्ण हो गये। महाराजा और महारानी ने गोदनहारिन की प्रसन्न होकर सराहना की राजा ने अपने गले का बेशकीमती नौलखों का हार स्वयं बदनीन के गले में डाल दिया। हल्के स्पर्श से रत्ना और महाराजा रत्नसेन पुलकित हो उठे। इस प्रेमतरंग का अनुभव दोनों को ही हुआ। रानी ने भी कुछ महसूस किया। स्वयं महाराजा ने इस सेविका प्रजा रत्ना को अपने गले की माला पहनाई। आश्चर्य?

रत्ना वापस अपनी कोठरी में आ गई। किन्तु उसे वह राजपुरूष का स्पर्श सुखद और आलौकिक लगता रहा। एक प्रसन्न चिन्तता उसे हर पल मुस्कराने को कहती। उधर महाराज रत्नसेन भी रत्ना के प्रेम में पूर्णतः डूब रहे थे। उसका रूप लावण्य आँखों की गहराई और चम्पई रंगों का जादू उन पर पूर्णतः छा चुका था।

रात्रि शैय्या पर कक्ष में भी हर जगह रत्ना की छवि ही
दिखाई देती।

रात्रि व्यतीत हो गई। दोपहर राजकाज में बीता किन्तु संध्या होते ही महाराजा ने महामंत्री को बुलाकर रज को उस गोदनहार तक ले जाने हेतु आदेश दिया।

ऐसा ही हुआ, पूर्णिमा की रात्रि का प्रथम प्रहर, चाँद, बादलों में धीरे—धीरे डोलता हुआ, धरती पर अपनी चाँदनी बिखेरता हुआ फागुन का अलमस्त मौसम।

कोठरी के बाहर अश्वों की टाप सुनकर रत्ना आश्वस्त हो उठी। महाराज नहीं—नहीं ....!.... वो .... हम जैसे सेविकाओं के घर नहीं।

किन्तु यही सत्य था, कपाट खोलते ही उसने महाराज को अश्व पर सवार देखा।

आइए, महाराज आइए।

महाराज के नेत्र रत्ना के मुख मंडल पर ही लगे थे। वह अश्व से नीचे आ गये।

रत्ना ने उन्हें पास पड़ी हुए चौकी पर बैठने के लिए कहा।

महाराज ने उसे अपने पास बैठने को कहा ''यहां बैठो रत्ना। आज मैं यहाँ एक महाराजा नहीं बल्कि प्रेमी के रूप में

आया हूं। मैं तुमसे अथाह प्रेम करता हूं प्रिय। रत्ना संकोच करती हुई राजा के समीप ही बैठ गई।''

प्रेम को कई रूप सरूपों से युक्त होते ये प्रेमी युगल अपने शाश्वत प्रेम की परिभाषाएं मन ही मन गढते रहें। अब विछोह की बेला थी। मगर ह्रदय में अथाह प्रेम की तरंगें थीं।

महाराजा और रत्ना का यह प्रेम मिलन अब एक सत्य और नियमानुसार होने लगा।

प्रेम की यह कहानी राजमहल रानी तक भी पहुंच गई। रानी को आंतरिक दुःख था वहीं आश्चर्य नहीं हुआ यही तो रजवाड़े की प्रथा है।

एक मिलन संध्या में राजा ने रत्ना से कहा मैं आपके रहने हेतु एक नवनिर्मित महल की व्यवस्था कर दूंगा। किन्तु रत्ना ने कहा नहीं आपके चरण हमारी कुटिया में आते हैं जिससे वो पवित्र हो जाती है महाराज मुझे आपका प्रेम मिला है इसके अन्यत्र मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। बस केवल आपका सात्विक प्रेम।

एक मिलन संध्या में राजा ने रत्ना से कहा मैं आपके रहने हेतु एक नवनिर्मित महल की व्यवस्था कर दूंगा। किन्तु रत्ना ने कहा नहीं आपके चरण हमारी कुटिया में आते हैं, जिससे वो पवित्र हो जाती है महाराज मुझे आपका प्रेम मिला है, इसके अन्यत्र मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। बस केवल आपका सात्विक प्रेम।

राजा ने इस अद्‌भुत स्त्री को निहारा और पुनः वक्ष से लगा लिया।वो दोनों प्रेमी युगल इस अलौकिक प्रेम में सराबोर हो गये।

राजकुँअर अब युवा हो गये थे उनके विद्या आरंभ के साथ जनेऊ और भस्म शस्त्र प्रशिक्षण का समय भी समीप आ गया था। महामंत्री ने महाराज को बताया यह खबर आई है कि नदी उस पार के राजा शाहलीन खां हमारे साम्राज्य पर आक्रमण करने वाले हैं।

महाराजा तनिक सोच में पड़कर बोले महामंत्री अपनी सैन्य सेना को तैयार रखें। आक्रमण से पहले नदी के पास अपने मजबूत सैनिकों को तैनात कर देवे यह दुस्साहस हमें बर्दाश्त नहीं। हमारे राज्य पर हमला करने की सजा दुश्मनों की शिकस्त हैं।

किन्तु शीघ्र ही महाराजा को युद्ध क्षेत्र में जाना पड़ेगा यह अनुमान नहीं था रानी ने राजा को तिलक लगाकर मंगलकामना के साथ तलवार भेंट की यशस्वी विजयी भवः कहकर उन्हें प्रस्थान करवाया।

रणभेरी गूंज उठी घोड़ों हाथियों पर सवार वीर सैनिकों ने आक्रमण की भनक से पूर्व ही सीमावर्ती क्षेत्र में जाकर रणभेरी प्रारंभ कर दी।

दुश्मनों के सैनिक भी इसी ताक में थे शाहलीन खां एक क्रूर और अहंकारी नवाब था।

दोनों ही ओर से आक्रमण प्रारंभ हो चुका था। संध्या होने वाली थी युद्ध विराम होने के कुद समय पूर्व ही शाहलीन खां ने बर्बरता से महाराजा पर वार करना चाहा, किन्तु त्वरित गति से महामंत्री ने आकर राजा को बचा लिया और स्वयं वीर गति को प्राप्त हो गये।

रात्रि का प्रारंभ हो चुका था। अब युद्ध विराम हो गया था किन्तु उन बचे–खुचे पलों में ही वीर सैनिकों ने अपने महामंत्री को मृत देख दुश्मनों के छक्के छुड़ा दिये। अब दुश्मन परास्त होकर लौट गये।

महाराजा की विजय हुई। राजमहल लौटते हुए सेना ने महाराज की विजय के नारे लगाए। राजमहल में उत्सव का माहौल था। रानी ने मुस्कुरा कर राजा का स्वागत किया। आरती उतार कर राजमहल में प्रवेश करवाया।

महाराजा ने इस विजय को संपूर्णतया महामंत्री के नाम कर दिया। उत्सव का आयोजन हुआ। इसी उत्सव में राजा ने एक ऐलान भी किया। "मैं अपने महामंत्री की यह कुर्बानी अपने राज्य के लिए गौरवन्वित साथ ही एक ऐलान भी किया" साथ ही एक ऐलान भी किया कि महामंत्री की पुत्री ज़बा से हमारे छोटे राजकुंवर शुभम् का विवाह होगा"।

तालियां बजी, दुदंभी और शहनाई नाट्य से वातावरण हर्षित हो उठा। इस विजय को अपनी रत्ना के साथ खुशी मनाने राजा रत्ना के पास गये। रत्ना ने महाराज के वक्ष पर सर रखते हुए कहा "बधाई हो महाराज, यह तो होना ही था। और हमारे महाराज के समान वीर कोई नहीं।

राजा ने सारी कथा रत्ना को बताई। साथ ही अपना वादा भी।

रत्ना ने महाराज को फिर से भक्ति और प्रेम से देखा–आप महान हैं महाराज।

अब राज कुंवर युवा हो चले थे। उनकी शिक्षा और सैनिक प्रशिक्षण भी संपूर्ण हो गया था।

महाराजा ने बड़े सुपुत्र शिवम् मात्र (5 मिनट) को राजतिलक और राजगद्दी पर बैठाने का निर्णय ले लिया शीघ्र ही दोनों पुत्रों का विवाह करने की भी घोषणा की।

अब महाराज उम्र के पड़ाव पार कर चौथें पड़ाव पर आ रहे थे। अस्वस्थ और व्यस्तता ने उन्हें रत्ना के पास जाने के नियम में कमी करनी पड़ी।

कई दिनों के बाद आने पर रत्ना उनसे उलाहने देती किन्तु फिर सत्य जानकर क्षमा मांग लेती। किन्तु यह भी वह महसूस करती कि वह तो हर पल अपने प्रिय महाराज के साथ है, फिर यह कैसी व्याकुलता।

महाराज का प्रेम निरन्तर एक सा ही रहा है। एक दिन ऐसा भी जब महाराज ने यह स्वीकार लिया कि वह अपने बड़े पुत्र का विवाह समीप के रजवाड़े भानपुर के राजा के बड़ी सुपुत्री सुयशा से स्वीकार कर लेंगे। वह सुन्दरी है बुद्धिवान भी है। हर तरह से शिवम् के योग्य है। शुभम् के लिए उन्होंने महामंत्री की बेटी ज़ेबा को चुन लिया था। रानी प्रसन्न थी।

अब दोनों ही विवाह पूरी शान–शौकत से राजसी ठाट से संपन्न हो गये। उसी के दूसरे दिन, महाराज ने बड़े वह शिवम् की राजतिलक कर उन्हें राज सिंहासन पर आसीन करवानें का भी निश्चय कर लिया।

यह सभी जलसे सम्पन्न हो गये। छोटे कुंवर को उप महाराजा घोषित किया गया।

अब राजमहल में दो रानियां आ गई थी राजा ने अपने सुपुत्रों को राज्य का दायित्व देकर स्वयं मुक्त हो गये। किन्तु उन्होंने यह भी कहा कि वह अपने अन्तिम समय तक अपनी प्रजा अपने राज मंत्र को नहीं विस्मृत करेंगे कोई भी सामान्य से सामान्य व्यक्ति की व्यथा का निराकरण यदि उनके राजकुंवर न कर सकें तो वे स्वयं संज्ञान लेकर निराकरण करेंगे।

महाराज इन सारी व्यवस्थाओं को अंजाम देने के बाद रत्ना के पास पहुंचे प्रिय आज मैं अपने दायित्वों को अपने बेटों को सौंप कर काफी हद तक हलका महसूस कर रहा हूं। तुमसे मिलने नहीं आ पाया। प्रिय क्या तुम मुझे क्षमा कर दोगी।

रत्ना ने राजा के होठों पर अपने होठों को रखते हुए कहा ''महाराज मुझे लज्जित न करें। आपका अस्तित्व मेरे भीतर हमेशा है। उसने वक्ष पर हाथ रखते हुए कहा"। राजा ने रत्ना को अपने समीप खींचकर वक्ष पर आसीन कर लिया।

तुम तो हमारी प्राण हो रत्ना। मेरा हृदय श्वास और सर्वस्व महाराज ने रत्ना के कपोलों पर चुम्बनों के कई रूप बिखरे दिए। रत्ना की आत्मा आर्द हो उठी थी प्रेम जल से। महाराज चले गये। महाराज बीमार हैं, शैय्या पर हैं यह सुनकर रत्ना का अन्तर रो पड़ा। वह हारकर उनसे मिलने गईं वक्ष पर सर रखकर महाराज के शीघ्र स्वस्थ होने की प्रभु से कामना की।

किन्तु कुछ समय बाद ही रत्ना को दुःखद समाचार मिला। राजा की मृत्यु हो गई है।

प्रस्तर शिल्प–सी रत्ना ने खाना–पीना छोड़ा दिया। बस एक माह बाद ही तो रत्ना ने भी अपना तन त्याग दियां रत्ना की मृत्यु के दूसरे ही दिन।

संध्या पूर्ण मासी के दिन उसी तरह कोठरी के कपाट खुले सफेद घोड़े पर सवार वही सजीला नौजवान महाराज रत्नसेन विराजमान थे। मृत रत्ना के तन से वही सौन्दर्य मूर्ति गोदनहार रत्ना मुस्कुराती हुई बाहर आई। महाराजा ने उसे प्यार से देखा फिर, बादलों की ओर चल पड़ा वह चन्द्रमा में विलीन हो गया। ◆

संध्या पूर्ण मासी के दिन उसी तरह कोठरी के कपाट खुले सफेद घोड़े पर सवार वही सजीला नौजवान महाराज रत्नसेन विराजमान थे। मृत रत्ना के तन से वही सौन्दर्य मूर्ति गोदनहार रत्ना मुस्कुराती हुई बाहर आई। महाराजा ने उसे प्यार से देखा फिर, बादलों की ओर चल पड़ा वह चन्द्रमा में विलीन हो गया।

पता :4/151, विशाल खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ–226010

मो. : 9838661663

काल के कपाल पर हस्ताक्षर

❑ लक्ष्मीकान्त शर्मा

प्रख्यात व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की जन्मशती के काल खंड में कई पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है। इस परिप्रेक्ष्य में प्रकाशित पुस्तक "काल के कपाल पर हस्ताक्षर" परसाई की एक औपन्यासिक जीवनी है। इस किताब के लेखक वरिष्ठ कथाकार राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय हैं। बकौल लेखक "काल के कपाल पर हस्ताक्षर" परसाई की प्रामाणिक जीवनी है जिसे औपन्यासिक फॉरमेट में लिखा गया है। पुस्तक में तथ्यों की प्रामाणिकता पर गहन शोध किया गया है। इस उपक्रम में लेखक ने परसाई के जीवन से संबन्धित सभी ज्ञात और अज्ञात स्थानों की श्रमसाध्य यात्राएं की हैं तथा उन अनेक लोगों से मिलकर पूर्व ज्ञात तथ्यों की जांच करने के साथ साथ नवीन तथ्यों का भी संकलन किया है।

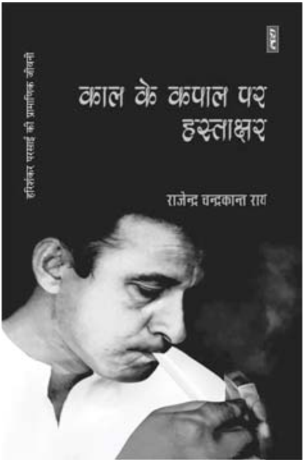

परसाई ने जब व्यंग्य लिखना शुरू किया तब हिन्दी साहित्य में व्यंग्य को एक विधा के रूप में मान्यता नहीं थी। इस लिहाज से हिन्दी साहित्य जगत में परसाई को एक उल्लेखनीय लेखक मानने से भी परहेज किया जाता था। परसाई की "स्पिरिट" को समझने में हिन्दी साहित्य को बहुत समय लगा। वे व्यंग्य को "स्पिरिट" मानते थे। उनके धारदार लेखन में वैश्विक एवं सार्वभौमिक मानवीय प्रवृत्तियों का प्रतिबिंब दिखता था। सर्वकालिक प्रासंगिकता वाले ऐसे लेखक की जीवनी पर काम करना एक चुनौती भरा कार्य है जिसमें खतरे भी हैं। राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय ने बड़ी ईमानदारी से इसका निबाह किया है। नोबल पुरस्कार से सम्मानित साहित्यकार गैब्रिएल गार्सिया मार्खेज से उनकी कालजयी किताब "एकाकीपन के सौ बरस" के बारे में एक

सवाल किया गया था कि उस किताब को लिखने में उन्हें कितना वक्त लगा, तब मार्खेज का जवाब थारू टाईपराईटर पर बैठकर लिखने में तो अठारह महीने लगे मगर मन और मस्तिष्क के पटल पर लिखने में अनेक वर्षों का वक्त लगा। राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय भी पुस्तक में एक जगह लिखते हैं रू ”अब जबकि अपने आत्मन लेखक और आदरास्पद व्यक्तित्व वाले हरिशंकर परसाई की जीवनी लिखने बैठा हूँ तो ऐसा लगता है कि परसाई जी की जीवनी लिखने की भूमिका 1973—74 में ही, तब बन चुकी थी, जब मैं बीए कर लेने के बाद एमए करने जबलपुर विश्वविद्यालय पहुंचा था। इसे लिखने की योग्यता हासिल करने में मुझे पचास साल का अरसा लगा और लिखने में तीन साल।” कालजयी व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की जीवनी लिखने की योग्यता हासिल करने में पचास साल लगने की आत्म स्वीकृति ही किसी लेखक को महान बनाती है।

”काल के कपाल पर हस्ताक्षर’ के प्रकाशित होते ही उसे विवाद के बादलों ने घेर लिया। कुछ आलोचकों ने उसे परसाई की प्रामाणिक जीवनी मानने से ही इंकार कर दिया। ऐसी प्रतिक्रियाएँ किताब पढे बिना और सुनी सुनाई बातों के आधार पर ही दी जाने लगीं। हुआ यूं कि पूर्वग्रह से ग्रसित कतिपय लेखकों और आलोचकों ने किताब का आकलन जीवनी लेखन के परंपरागत फॉरमेट के आधार पर करना शुरू कर दिया जिसके कारण उन्हें पुस्तक की प्रामाणिकता पर संदेह हुआ जबकि इस जीवनी को लिखते समय लेखक ने औपन्यासिक फॉर्मेट को अपनाया था। लेखक ने पुस्तक में स्पष्ट रूप से इंगित भी किया है कि उन्होनें इस जीवनी को लिखने के लिए उपन्यासपरक जीवनी शैली अपनाई थी। किताब के पूर्वाङ्क में लेखक स्वयं स्वीकार करते हैं” फ्रांसीसी साहित्य को देखें तो हम पाएंगे कि वहाँ पर ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की लंबी परंपरा मौजूद है, जिनमें वास्तविक पात्रों के नामों के साथ उन्हें रचा गया है। उनमें ऐतिहासिक सत्यता के साथ साथ लेखक ने कल्पित प्रसंगों का उपयोग भी किया है। पर वे बिलकुल ही कपोल कल्पित नहीं हैं। घटनाओं के घटित होने की परिकल्पना से परिपूर्ण हैं।” बहरहाल, बाद में लेखक के स्वयं और देश के कई नामचीन समालोचकों के सत्यान्वेषण एवं स्पष्टीकरण से अवांछित विवाद का पटापेक्ष हो गया और किताब का देशव्यापी स्वागत किया जा रहा है।

”काल के कपाल पर हस्ताक्षर’ के प्रकाशित होते ही उसे विवाद के बादलों ने घेर लिया। कुछ आलोचकों ने उसे परसाई की प्रामाणिक जीवनी मानने से ही इंकार कर दिया। ऐसी प्रतिक्रियाएँ किताब पढ़े बिना और सुनी सुनाई बातों के आधार पर ही दी जाने लगीं। हुआ यूं कि पूर्वग्रह से ग्रसित कतिपय लेखकों और आलोचकों ने किताब का आकलन जीवनी लेखन के परंपरागत फॉरमेट के आधार पर करना शुरू कर दिया जिसके कारण उन्हें पुस्तक की प्रामाणिकता पर संदेह हुआ जबकि इस जीवनी को लिखते समय लेखक ने औपन्यासिक फॉर्मेट को अपनाया था। लेखक ने पुस्तक में स्पष्ट रूप से इंगित भी किया है कि उन्होनें इस जीवनी को लिखने के लिए उपन्यासपरक जीवनी शैली अपनाई थी। किताब के पूर्वाङ्क में लेखक स्वयं स्वीकार करते हैं ”फ्रांसीसी साहित्य को देखें तो हम पाएंगे कि वहाँ पर ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की लंबी परंपरा मौजूद है, जिनमें वास्तविक पात्रों के नामों के साथ उन्हें रचा गया है।

परसाई की इस जीवनी का शीर्षक भी बेहद अनूठा है। किताब की पूरी यात्रा करने के बाद लगता है कि जीवनी सचमुच में काल के कपाल पर हस्ताक्षर ही तो है। लेखक परसाई के जीवन की हर छोटी बड़ी घटना का केवल विवरण भर नहीं देते हैं बल्कि घटना विशेष की देश काल और समसामयिक परिस्थितियों के बरक्स गंभीर पड़ताल भी करते हैं। लेखक कहीं कहीं कल्पना का सहारा लेकर परसाई के व्यक्तित्व की खूबियों को जादुई स्पर्श कराते दिखते हैं। युवा परसाई दादा श्यामलाल और डोरीलाल के साथ जंगल से गुजर रहे हैं। पहले ही से उनके बीच जो बातचीत चल रही है उससे प्रतीत होता है की दादा श्यामलाल कुछ संकुचित दृष्टि वाले व्यक्ति हैं, जातिवादी सोच वाले, सांप्रदायिक विचार वाले। अब लेखक परसाई के भीतर परकाया प्रवेश कराते हैं और वह भी किसका ! प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत का। हरि, दादा श्यामलाल को पंत की कविता सुनाते हैं : छोड़ द्रुमों की छाया / तोड़ प्रकृति से भी माया / बाले ! / तेरे बाल जाल में / कैसे उलझा

दूँ लोचन? / भूल अभी से इस जग को ! फिर कविता की व्याख्या करते चलते हैं। अब श्यामलाल के चित्त मे जिज्ञासा पैदा होती है और सुनने की। बालक हरि कविता की अगली पंक्तियाँ सुनाते हैं रू तजकर तरल तरंगों को / इंद्रधनुष के रंगों को / तेरे भभ्रंगों से कैसे बिंधवा दूँ निज मृग सा मन ? / भूल अभी से इस जग को ! इस कविता के माध्यम से दादा श्यामलाल की सोच में एक बड़ा परिवर्तन आता है : "इस तरह हरि ने श्यामलाल दादा का मन जंगल की परेशानियों और हिन्दू—मुस्लिम भेदभाव वाली छोटी छोटी बातों से हटाकर, बहुत ऊंचाईयों पर पहुंचा दिया था। मन के विकारों को निकालने का हुनर हरि के पास बचपन ही से था। बुरी चीजों को निकालना है तो उस जगह को अच्छी चीजों से भर दो।" किताब में जीवन दर्शन के विविध दृष्टांत यत्र—तत्र बिखरे पड़े हैं।

लेखक ने तथ्यों के साथ साथ भाषा और बोली को लेकर भी कमाल का काम किया है। पात्रों के परस्पर संवाद सहज बुन्देली बोली में कराकर एक स्वाभाविक परिवेश की निर्मिति असाधारण है। बीच बीच में छायाचित्रों तथा संदर्भित कविताओं के प्रयोग ने पठनीयता को रोचक बना दिया है।

परसाई की यह जीवनी दो खंडों में है जिसे एक ही पुस्तक में समाहित किए जाने से 662 पृष्ठों की किताब कुछ भारी भरकम सी हो गई है। 'काल से मुठभेड़' शीर्षक वाले खंड—एक भारत की आजादी के पूर्व और 'काल के कपाल पर हस्ताक्षर' वाले खंड—दो आजादी के बाद के परसाई के वृहत्तर जीवन का दिग्दर्शन कराते हैं। पुस्तक में कुल 67 अध्याय हैं जिनमें से 29 अध्याय खंड एक में और 38 अध्याय खंड दो में हैं। इसके अतिरिक्त पूर्वाङ्क और पूर्व पीठिका अलग से है। अध्यायों की क्रम संख्या अंकित न होने से समीक्षक को पूरी संख्या गिननी पड़ी। पुस्तक के अंत में सात परिशिष्ट भी दिये गए हैं जो परसाई के सम्पूर्ण रचना संसार, उन तमाम लोगों के बारे में जिनसे मिलकर लेखक ने पिछले चालीस वर्षों में जानकारी जुटाई, परसाई के जीवन की प्रमुख घटनाओं, स्तम्भ लेखन, सम्मान एवं पुरस्कार से संबन्धित हैं।

किताब का ब्लर्ब जाने माने कवि—समीक्षक लीलाधर मंडलोई ने लिखा है। मंडलोई लिखते हैं "इस जीवनी में परसाई के अलक्षित जीवन प्रसंगों को पढ्ना रोमांचकारी है। इसमें लक्षित परसाई से कहीं अधिक अलक्षित परसाई हैं जिन्हें जाने बिना वह चरितव्य समझ नहीं आएगा, जो परसाई के मनुष्य और लेखक को एपिकल बनाता है।"

परसाई की यह जीवनी दो खंडों में है जिसे एक ही पुस्तक में समाहित किए जाने से 662 पृष्ठों की किताब कुछ भारी भरकम सी हो गई है। 'काल से मुठभेड़' शीर्षक वाले खंड—एक भारत की आजादी के पूर्व और 'काल के कपाल पर हस्ताक्षर' वाले खंड—दो आजादी के बाद के परसाई के वृहत्तर जीवन का दिग्दर्शन कराते हैं। पुस्तक में कुल 67 अध्याय हैं जिनमें से 29 अध्याय खंड एक में और 38 अध्याय खंड दो में हैं। इसके अतिरिक्त पूर्वाङ्क और पूर्व पीठिका अलग से है। अध्यायों की क्रम संख्या अंकित न होने से समीक्षक को पूरी संख्या गिननी पड़ी। पुस्तक के अंत में सात परिशिष्ट भी दिये गए हैं जो परसाई के सम्पूर्ण रचना संसार, उन तमाम लोगों के बारे में जिनसे मिलकर लेखक ने पिछले चालीस वर्षों में जानकारी जुटाई, परसाई के जीवन की प्रमुख घटनाओं, स्तम्भ लेखन, सम्मान एवं पुरस्कार से संबन्धित हैं।

परसाई जन्मशती वर्ष में "काल के कपाल पर हस्ताक्षर'' निश्चित रूप से वरिष्ठ लेखक राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय का एक अमूल्य अवदान है। पुस्तक साहित्यकारों, साहित्यिक अध्येताओं, हिन्दी साहित्य के छात्रों, शोधार्थियों, पत्रकारों के अलावा आम पाठकों की सोच को समृद्ध करेगी, ऐसी आशा की जा सकती है। ◆

पुस्तक का नाम : काल के कपाल पर हस्ताक्षर

लेखक : राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय

प्रकाशक : सेतु प्रकाशन प्रा. लि.

सी.से. नोएडा (उ.प्र.) 201301

पृ.सं. : 663

मूल्य : 625

पता : 33, चौथियार हाउस, अलकनंदा एस्टेट, बी.बी. अम्बेडकर केन्द्रीय वि.वि. बिजनौर रोड, खालसा, लखनऊ—226025 (उ.प्र.)

मो. : 9425800781

सैय्यद नाज़िश अहमद उफ़क़ आज़मी की कविता

नया साल मुबारक हो

ये नया साल मुबारक हो तुम्हें
ऐन मुमकिन है कि खोई हुई मंज़िल मिल जाए
और कमज़ोर सफीनों को भी साहिल मिल जाए
शायद इस साल ही कुछ चैन दिलों को हो नसीब
शायद इस साल तुम्हें जीस्त का हासिल मिल जाए
ये नया साल मुबारक हो तुम्हें

सुबह के भूले हुए शाम को शायद घर आएं
अपने ग़म खानों में चुपचाप ही खुशियां दर आएं
शायद इस साल जो सोचा था वह पूरा हो जाए
शायद इस साल तुम्हारी भी मुरादें बर आएं
ये नया साल मुबारक हो तुम्हें

शायद इस साल शिकस्ता हों मसाअब की सिलें
शायद इस साल ही सहराओं में कुछ फूल खिलें
राहे हस्ती के दुराहे पर अचानक एक दिन
शायद इस साल कुछ बिछड़े हुए आन मिलें
ये नया साल मुबारक हो तुम्हें

◆

पता : 2037/3, सी ब्लाक,
इन्दिरा नगर, लखनऊ
मो. : 9305365035

भारत सरकार के रजिस्ट्रार आफ न्यूज पेपर्स की रजिस्ट्री संख्या 33122/78
भारतीय डाक विभाग की डाक पंजीयन संख्या–एल.डब्लू./एन.पी. 432/2006

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रमुख प्रकाशन

उत्तर प्रदेश मासिक	:	समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार की मासिक पत्रिका समूल्य उपलब्ध एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।
नया दौर (उर्दू)	:	सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विषय की एक उर्दू मासिक पत्रिका, एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।
वार्षिकी (हिन्दी/अंग्रेजी)	:	उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के विस्तृत आंकड़ों एवं सूचनाओं का वार्षिक विवरण मूल्य रु. 325/– मात्र।

महत्वपूर्ण प्रकाशनों के लिए सम्पर्क करें

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र.
दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
उत्तर प्रदेश के समस्त जिला सूचना कार्यालय

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. स्वत्वाधिकारी के लिए शिशिर, निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ द्वारा प्रकाशित तथा प्रकाश पैकेजर्स, लखनऊ में मुद्रित